सभ्य समाज

और

उसके कारनामे

आचार्य स्वामी विश्वनाथ 'विश्वेश'

गुरुपूर्णिमा सं० १९९८ वि०

प्रकाशक
गुप्त आदर्श, बनारस सिटी।

प्रथम संस्करण] [मूल्य डेढ़ रुपया

मुद्रक—बनारसी प्रसाद गुप्त
'श्री' यन्त्रालय, सत्तीचौतरा, काशी।

भारत-वसुन्धरा के पवित्र वक्षस्थल पर नग्न ताण्डव करने वाले हिन्दू समाज को कौन नहीं जानता ? आज विश्व के कोने-कोने में इसके अविचार पूर्ण कर्मों की धूम मच रही है। जिधर देखो उधर ही इसके काले कारनामे दिखाई दे रहे हैं। सर्वत्र निन्दा हो रही है।

हिन्दू समाज अपने को महापवित्र कहने के लिये तैयार है। तिलक छाप लगाता, मन शुद्ध न होने पर भी घंटों माला फेरा करता, चित्त-वृत्तियों के निग्रह किये बिना प्रतिमाओं की पूजा करता तथा आचरणहीन होने पर भी राम और कृष्ण का भक्त बता कर अपने को सच्चा सनातनधर्मी कहा करता है। इतनी अशिष्टता पर भी संसार में अपने को आर्य्य तथा अपने नियम के विरुद्ध आचरण करने वालों को अनार्य्य, म्लेच्छ, चांडाल आदि

कह कर सम्बोधन करता है। स्वयं महा अपवित्र होने पर भी अपने को पवित्र सिद्ध करने के लिये इस नीच ने कालनेमि का रूप धारण कर लिया है।

इस वीसवीं शताब्दि का हिन्दू समाज विप भरे स्वर्ण कलश के समान है। वास्तव में समाज का सम्पूर्ण अंग प्रत्यंग दूषित हो चुका है। इसका कोई भी अंग स्वरक्षित दोपहीन दृष्टिगोचर नहीं होता। साथ ही अनियन्त्रित होने से अनुचित स्वतंत्रता ने इसे अधिक बिगाड़ा है, इतने पर भी कुशिक्षा और कुरीतियों ने तो और भी सर्वनाश किया है।

हिन्दू जाति की बागडोर सदा से साधुओं, संन्यासियों तथा ब्राह्मणों के हाथ रही। पूर्वकाल मे यही लोग सामाजिक नियम बनाने वाले तथा इसे सन्मार्ग दिखाने वाले थे। इन्हींके आदेश से क्षत्रिय शासन करते तथा नियमित रूप से समाज की रक्षा करते थे। सामाजिक राज व्यवस्था होने के कारण राजदण्ड के भय से वैश्य-शूद्रादि भी सामाजिक नियमों का उल्लंघन नहीं कर पाते थे।

कहा जाता है कि अतीत काल में हिन्दू समाज उन्नति की चरम सीमा पर था। सामाजिक तथा धार्मिक बन्धन राजशासन के अन्तर्गत कानून रूप में रहने से लोगों को विवश होकर राजाज्ञा माननी पड़ती थी। उस समय में सामाजिक तथा धार्मिक नियमों से च्युत होने पर कठिन-से-कठिन दण्ड दिया जाता था। आश्रम तथा वर्ण धर्म से च्युत होने वालों को प्राणदण्ड की आज्ञा दी जाती थी। कुकृत्य, अविचार तथा अत्याचार करने वालों की

इन्द्रियाँ काट ली जाती थीं। कुदृष्टि डालने वाले दुराचारियों की आँखें फुड़वा दी जाती थीं। सती साध्वियों को सताने वाले दुष्टों को जिन्दा जला दिया जाता था। कन्या, कुमारी तथा बालिकाओं पर बलात्कार करने वाले नराधमों को सदा के लिये यमलोक भेज दिया जाता था। साधारण अपमान करने वाले कठिन से कठिन दण्ड पाते थे।

किन्तु शोक! पूर्वीय परम्परा जाती रही। समाज-सुधारक स्वयं ही कुरीतियों में फँस गये। व्यवस्था तथा शासन भी क्षत्रियों के हाथ से जाता रहा। धार्मिक तथा सामाजिक बन्धनों में लोगों को स्वतन्त्रता मिल गई। राजदण्ड का भय नहीं रह गया। फिर क्या? धीरे-धीरे धार्म्मिक एवं सामाजिक पतन होते-होते पूर्ण रूप से आत्मिक तथा नैतिक पतन हो गया।

हिन्दू समाज के पतन का प्रधान कारण यही है, साथ ही भेद भावों ने इसे और भी गिराया। हमारा इतिहास इस बात का साक्षी है। शक्ति के अभिमान ने ईर्ष्या उत्पन्न कर दी। ओह! उसके बहते हुए प्रबल प्रवाह में शील, श्रद्धा और भक्ति बह गयी, अभिन्नता जाती रही। भिन्नता राक्षसी ने आकर अधिकार स्थापित कर लिया। हाय, इसी भिन्नता ने हमारा सर्वनाश किया।

बाल्यकाल से ही मेरा ध्यान समाज की ओर आकर्षित रहा है। सामाजिक कुरीतियों तथा हिन्दू जाति के भीतर भरे भेद-भावों को देख-देख मुझे बड़ा विस्मय होता था। मैं बहुत दिनों से समाज के भीतर होने वाले भिन्न-भिन्न प्रकार के अत्याचारों को प्रकट करने के विचार में था। आज वही समाज की अन्त-

कृति उसे ही समर्पण करने का अवसर प्राप्त हुआ है। यदि चाहे तो उपरोक्त साधनों के पूर्ण रूप से न रहने पर भी समाज अपना सुधार कर सकता है।

समय-समय पर जो कुछ मैंने वर्तमान समाज के भीतर आँखों देखा, कानों सुना तथा समाचार पत्रों में पढ़ा है उसीके आधार पर यह पवित्र समाज का नङ्गा नाच उसके सामने रक्खा है। अयोध्या, काशी, मथुरा, कलकत्ता और लम्वे नारायण आदि की कथाओं से लोग परिचित ही होंगे। बहुत पहले उन स्थानों की काली करतूतें संसार के रंगमंच पर प्रकट हो चुकी हैं। अतः मेरा विचार किसी को व्यक्तिगत दोषी बनाने का नहीं है, और न मैं व्यक्तिगत हस्ताक्षेप करता ही हूँ।

मेरा एक मात्र उद्देश्य समाज की कुरीतियों और उसके कुलांगारों के कुकृत्यों को पवित्र बने हुए ढोंगी समाज के सन्मुख प्रकट करना है। इसीलिये मैंने यह पुस्तिका लिखी है। बात सच्ची है, फिर भी काने को काना कहना, वेश्यागामी को रंडीवाज बताना, घूसखोर हराम का माल खाने वाले हाकिमों को घूसखोर या चोर कहना वर्तमान समय में महा अपराध समझा जाता है। इस युग में सत्य कथन का भी लोगों को कटु फल भोगना पड़ता है।

परन्तु नहीं, मैं वैसा कहने वाला नहीं हूँ। मैं कानों, वेश्यागामियों और हरामखोरों का चिकित्सक हूँ। साथ ही मैं उस समाज से कह रहा हूँ जिसका ठेकेदार हूँ। मै अपने उन भाइयों से अपील कर रहा हूँ जिन्होंने समाज-सुधार का ठेका लेकर 'अपने को पवित्र पथ से गिरा दिया है अथवा सत्य की हिंसा कर

तथा धर्म का गला घोंट पुनीत इष्ट को भ्रष्ट कर दिया है। [illegible] इससे समाज तथा हमारे पथभ्रष्ट बन्धुओं का ध्यान आकर्षित होगा और वे अपने सुधार में आशातीत सफलता प्राप्त करेंगे।

मैंने पुस्तक में दश कथाओं का वर्णन किया है। प्रत्येक कहानी के पहले उसका पूर्वाभास लिखा है, जिससे कथानक का भाव पाठकों की समझ आ जाय। पूर्वाभास के पश्चात् समाज के अन्तर्गत होने वाली सच्ची घटनाओं का चित्रण है। कहानियों में काल्पनिक नामों का वर्णन किया गया है, जिससे लोग व्यक्तिगत अनुचित हस्तक्षेप न करें।

पहली कहानी धर्म की आड़ में होने वाले पापों के बारे में लिखी गयी है। इसी प्रकार की घटनाएँ अयोध्या, वृन्दावन आदि में पहले हुई थी। दूसरी कथा में पापाचरण का वीभत्स दृश्य का वर्णन किया गया है। तीसरी कथा में अनुचित भक्ति दिग्दर्शन है। चौथी कथा दुराचार-ताण्डव से सम्बन्ध रखती है। इसी प्रकार अमृत में हलाहल, नारकीय लीला, व्यभिचार की पराकाष्ठा, देवदासी और निर्लज्जता का नग्न नृत्य नामक कहानियाँ लिखी गयी हैं।

इन कहानियों के द्वारा समाज की सभी कुरीतियाँ प्रकट की गयी हैं। इसमें बालविवाह की बुराई, बहु विवाह से पाप, वृद्ध-विवाह का परिणाम, वेश्यावृत्ति का फल, विधवाओं के करुण-क्रन्दन का सर्वनाशी रहस्य, देवदासियों की पाप लीला का प्रतिफल, सह-शिक्षा की बुराइयाँ तथा धर्म के ठेकेदार समाज सुधारकों के काले कारनामों का पूर्ण चित्र दिखलाई देगा। आशा है प्रेमी पाठकगण

इन विषयों पर विचार कर समाज के भीतर होने वाले जघन्य कर्मों को निर्मूल करने के लिये शीघ्र तत्पर होंगे।

मैं धर्म के ठेकेदारों, शिक्षा, सभ्यता और ज्ञान देने वाले गुरुओं, नैतिक और आत्मिक उन्नति कराने वाले आचार्य्यों तथा समाज के अग्रगण्य नेताओं से सविनय निवेदन करता हूँ कि वे परस्पर सद्भाव उत्पन्न करें तथा एक सूत्र में संगठित हो पतित हिन्दू समाज का पुनरुत्थान करें।

—स्वामी विश्वनाथ 'विश्वेश'
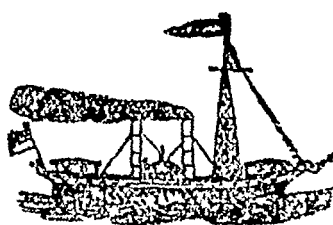
समाज से

अज्ञानी अनर्थकारी ज्ञानान्ध समाज !

अरे हृदयहीन ! उच्छृङ्खल तूने अपना सर्वस्व गँवाया । हा ! इतना ही नहीं, अपने को नारकीय तथा पतित बना डाला, अब तो आँखें खोल और अपनी उन कुत्सित कुरीतियों का अन्त कर जिनके द्वारा तुम्हारी यह अधोगति हुई है । अन्यथा तुम्हारा अस्तित्व भी शेष न बचेगा । यथा शीघ्र जाति पर न्यायपूर्वक शासन करने के लिए तैयार हो जा और अपने उद्दण्ड अविचारी पुत्रों की नकेल सन्मार्ग में लगा । अपने कुलांगारों का सुधार कर । समाज ! अपने नारकीय नरपिशाच आत्माओं को नरगुणों से पूर्ण कर । यदि तू दृढ़तापूर्वक सुधार के लिये कटिबद्ध हो जायगा तो निस्सन्देह तुम्हारा अभीष्ट निर्विघ्न पूर्ण होगा ।
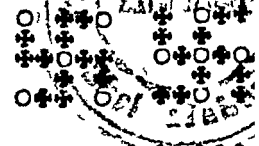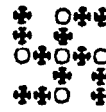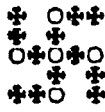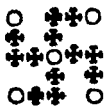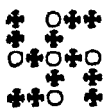
समर्पण
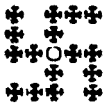
अन्तर्यामी प्रभो !
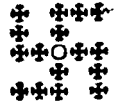
तुम्हारे नर-पुत्रों की कुकृति तुम्हारे ही पवित्र चरणों में सादर
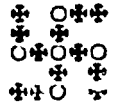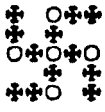
समर्पित
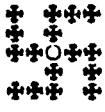
भगवन् !
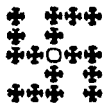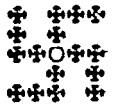
अज्ञानी, अनर्थकारी आरत हिन्दू समाज को बल दो, बुद्धि दो और विवेक दो। इस ज्ञानान्ध को दिव्य दृष्टि और हृदय दो, जिससे अपनी दुर्दशा देख हृदय में विचार करे एव बुद्धि, विवेक तथा बल से अपने को पूर्वीय गुणशाली वन सम्पन्न समाज वना सके।
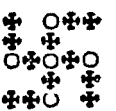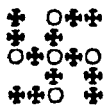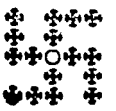
प्रभो ! इस नारकीय समाज का अधोगति से निस्तार हो।

समर्पक—

लेखक.

विषय सूची

सभ्य समाज

और उसके कारनामे

पूर्वाभास

आज पतित समाज नृशंसता की बलि-वेदी पर नंगा थिरक रहा है, कुचेष्टाओं ने उसे पूर्ण निर्लज्ज बना दिया है, उसकी वृत्तियाँ दूषित हो चुकी हैं, हृदय सहृदयता को खो चुका है, नेत्रों में शील भी नहीं रह गया—नीच समाज पतन के पानी में पैठ कर अपनी प्राचीन सभ्यता को तिलाञ्जलि दे बैठा है।

यह क्या? इसने तो सब कुछ गँवा दिया। भीषण अनर्थ! भयंकर अत्याचार! अमानुषिक अपकर्म! ओह! यह क्या? क्या सचमुच मतवाला हो गया? नहीं, कदापि नहीं—वह मतवाला और पागल नहीं, अबोध और अज्ञान नहीं—वह

प्रत्यक्ष नारकी और कुकर्मी हो गया। अविचारी और अत्याचारी नहीं। नहो-नहो, समाज—कालनेमि समाज, प्रत्यक्ष व्यभिचारी हो गया।

धर्म के नाम पर मनमाना अनर्थ करना मतवालों का काम नही, विषयाशक्त हो व्यभिचार के पीछे नंगे नाचना, कामेच्छा की पूर्ति के लिये सत्य और धर्म की हिंसा करना, स्वार्थ-साधन के लिये—नहो-नही, केवल अपने लिये ही दीनों का रक्त बहाना मतवालों का काम नही—यह तो प्रत्यक्ष जघन्य नर-पशुओं का कुकृत्य है।

समाज! आँखें खोल! धर्म का दम्भ भरने वाला कालनेमि समाज! अपने हृदय को टटोल। अपने को प्रेमघट की तुलना में रखने वाला विषपूर्ण—समाज! अपने भीतर देख। नि:सन्देह तू विष से भरे हुए स्वर्णघट के समान है। ऊपर तो तू सुन्दर है, मनमोहक है—परन्तु तेरे भीतर हलाहल छिपा है।

तेरे हृदय में विष है, आँखों में जहर है, मुख में गरल है—तेरे रोम-रोम में विष का सञ्चार है। समाज! तेरा अङ्ग दूषित हो रहा है—तेरे मानसमन्दिर का कोना-कोना क्षुब्ध हो उठा है। अब और बाकी ही क्या है?

देख! तेरे बड़े-बड़े सुपुत्र वेश्याओं के चरणसेवी बन चुके है। तेरी लाखों आत्मायें संसार से लुक-छिप कर मनमाना व्यभिचार कर रही हैं। वह देख! तेरी सहस्रों धार्मिक सन्तन्तियाँ—व्यभिचार की भीषण ज्वाला में धायँधायँ करते हुये

भस्मीभूत हो रही हैं। ओह! एक नहीं अनेकों आत्मायें गर्भपात, भ्रूणहत्या तथा शिशु-वध से अपने को कलुषित कर रही है। तेरे बच्चे-बच्चे बिगड़ चुके हैं। समाज! तेरी देवियों का भी वही हाल है। छोटी-छोटी बच्चियाँ, अबोध बालिकायें, गौरी और रोहिणी कहाने वाली आठ-आठ नौ-नौ वर्ष की देवियाँ भी अछूती नहीं हैं। उन्हें भी तेरे हृदय का हलाहल भस्म कर रहा है, कामी बना रहा है तथा प्रयत्नशील रहने पर भी इष्टपथ पर आगे बढ़ने नहीं देता।

संसार में धर्म का डङ्का पीटने वाला, जगत के सन्मुख नैष्ठिक ब्रह्मचर्य की डींग मारने वाला, भक्ति का दम भरने वाला तथा विश्वगुरु का दावा करने वाला समाज! आज तू पतित है। क्या इतनी नीचता, अशिष्टता तथा विषमता होने पर भी तू विश्वगुरु का दावा रखता है? इतना पतित होने पर भी ऊँच बनने के लिये मरता है—प्रत्यक्ष नरकार्णव होते हुये संसार की आँखों में धूल झोंककर स्वर्ग सिद्ध करने का सतत प्रयत्न करता है?

तेरे पास क्या है? दिशाओं को कँपाने वाला बल तथा संसार को चरणों पर गिराने वाली बुद्धि अथवा विश्व को मोहित करने वाली दिव्य विभूति! क्या है? बोल!

आत्मज्ञानियों की सन्तानें अविद्या में सनी हैं। विश्वगुरुओं की आत्मायें अन्धकार में पड़ी हैं। वीरों की सन्ततियाँ भीरु और कायर हो रही हैं। छत्रपतियों के वंशज, धनकुबेरों के

सुपुत्र उदर पालन के लिये मर रहे हैं। इसके अतिरिक्त सब से बड़ी बात तो यह है कि तेरी सन्तानें प्रत्यक्ष अविचारी और अत्याचारी हो गई है।

आचारवान पूर्वजों की आत्माओं को अविचार पूर्ण कार्यों में बढ़ते और अत्याचार की ज्वाला में झुलसते—नहीं-नहीं—प्रत्यक्ष व्यभिचार करते देख संसार हँस रहा है, तालियाँ पीट रहा है, बोली मार रहा है—इतना ही नहीं, नीच और कुकर्मी कह-कह कर पुकार रहा है। दुराचारी और व्यभिचारी कह घृणा की दृष्टि से देख रहा है।

समाज! अपने भीतर धर्म के नाम पर होने वाले व्यभिचारों को देख। अपने बड़े-बड़े धर्मगुरुओं की काली करतूतों पर दृष्टि डाल। हा! इन्हीं नारकीय नर-पिशाचों के द्वारा तेरी लाखों बहू-बेटियाँ लुट रही है। सहस्रों सती-साध्वियाँ अपना अमूल्य सतीत्व बरबस गँवा रही हैं। तेरी एक नहीं अनेकों कुँवारी कन्यायें अपने को खो रही है। समाज! हीजड़ा समाज! तू सब कुछ जानता है, फिर भी शिखण्डी बना हुआ कनखियों से यह सब देख रहा है—क्या तुझे लज्जा नहीं आती? क्या यह अत्याचार देख तेरा रक्त उबल नहीं पड़ता?

यदि तुझे, अब भी कुछ न मालूम हुआ हो तो अपने उन धर्मगुरुओं के सच्चे स्वरूप को देख, जिनके लिए तू प्राण देने को तय्यार है।

धर्म की आड़ में

उत्तर भारत मे अयोध्या हिन्दुओं का पवित्र स्थान है। इसी पुण्यभूमि में एक बार भगवान राम ने जन्म धारण कर लीलाये की थी तथा पुनीत धाम में निवास किया था। अयोध्या—अवधपुरी कभी इन्द्रलोक के समान शोभित थी। पूर्वकाल में इसे ही भूमण्डल की राजधानी होने का गर्व था। एक नहीं सैकड़ों छत्रधारियों की यही उद्भवकर्त्री थी।

अयोध्या पुण्यनगरी को कौन नहीं जानता? हिन्दू उसका नाम सुनते ही प्रसन्न हो उठते हैं—उन्हें विश्वास है कि यह

राम की जन्मभूमि वास्तव में मुक्तिदायिनी है। प्रतिवर्ष लाखों भक्त राम की महिमा गाते हुए अपने संचित पापों से उद्धार पाने के लिये प्रत्येक उत्सवों पर यहाँ पधारते हैं।

आज परम पुनीत चैत्र मास के शुक्लपक्ष की नवमी है। आज के ही दिन भगवान रामचन्द्र ने जन्म धारण कर पृथ्वी का भार मिटाया था। दुर्दण्ड राक्षसों का नाश कर भक्तों को अत्याचारों से बचाया था। मर्य्यादा-पुरुषोत्तम राम—धर्म-रक्षक राम ने इसी चैत्र शुक्ल नवमी को मनुष्य तन धारण कर संसार को त्रिताप से मुक्त किया था।

इस अवसर पर भारतीय धर्मप्राण जनता में अयोध्या की यात्रा अक्षय पुण्यवती मानी गयी है। तिथि निकट आते ही यार लोगों की बांछें खिल गईं। प्रेमी–प्रेमिकाओं के चेहरे पर प्रसन्नता दौड़ गई। गाँव-गाँव से टोलियाँ निकल पड़ी, सभी गाते-बजाते अयोध्या की ओर चल पड़ी। टोलियों में अनेकों प्रेमी–प्रेमिकायें भी जा मिलीं। इसी धर्म-यात्रा के वहाने उनकी चिरसंचित मनोभिलाषायें सिद्ध होंगी। कितने ही प्रेमियों के वर्षों के परिश्रम का मूल्य आज ही मिलेगा। समाज ! ये यात्रियों की टोलियाँ क्या करेंगी ? धर्म-यात्रा की आड़ में क्या हो रहा है ?

राम की जन्मभूमि अधिकांश हिन्दुओं की गुरुभूमि है। धर्म-गुरुओं की—एक नहीं सैकड़ों बड़ी-बड़ी छावनियाँ है। दूर-दूर के यात्री अपने-अपने गुरुधामों में जाकर ठहरने लगे।

पड़ाव पड़ गया, रावटियाँ खड़ी हो गईं, शामियानें तन गये ! तम्बू-कनातें लग गईं। यात्रियों की भीड़ बढ़नें लगी।

आज भारत के घर-घर में उन्हीं राम का जन्मोत्सव मनाया जा रहा है। राम की मातृभूमि अयोध्या आज भक्तों से भरी हुई दिखला रही है। लाखों नरमुण्ड चारो ओर एकत्र हो रहे हैं। सहस्त्रों युवतियाँ राम की बाँकी झाँकी के लिये लालायित हो पड़ी हैं। अनेकों कुल ललनायें—असूर्यस्पश्या बधुयें—भक्ति की धार में बही जा रही हैं। ओह ! आज अयोध्या यात्रियों की रेल-पेल कें जगमगा उठी है। प्रत्येक दिशायें स्त्रियों के नूपुर, क्षुद्रघंटिका और झाँझों के झंकार से पूरित हो रही हैं।

नगर की धर्मशालायें यात्रियों से भर गईं। गद्दीधारी साधुओं की छावनियाँ भक्तों के रामनाम से गूँज उठीं। गली-कूंचे, मठ-मन्दिर, जिधर देखिये सभी स्थान रामनाम के प्रतिध्वनि से निनादित हो उठे। ओह ! अयोध्या ! पुण्य-भूमि अयोध्या, आज पुन. देवताओं की नगरी के समान—शोभित हो उठी है।

ठीक दोपहर को १२ बजे उत्सव आरम्भ हो गया। हजारों मन्दिरो में एक साथ ही घण्टे, झाँझ और घड़ियाल बज उठे। उसीके साथ भक्तों ने भी स्वर मिला दिया। अब क्या था ? पृथ्वी और आकाश एक हो उठा, उस कर्कश निनाद से दिशायें काँप उठी।

इस कठोर रव ने गली-गली में पहुँच कर भक्तों के कानों

में रामजन्म की सूचना डाल दी। जो जिस स्थिति में जैसे पड़ा था, उठ दौड़ा। यात्रियो की भीड़ मन्दिरों की ओर रेल-पेल करती हुई चल पड़ी। उस अपार जन समुद्र में अपना और पराया नहीं सूझता था। छोटे-बड़े, स्त्री-पुरुष सभी भक्ति के मद में डूबे हुये दर्शन की लालसा से आगे बढ़े जा रहे थे।

एकाएक यह क्या? अरे पुण्यभूमि में यह कर्म! सदाचारी राम, पति-व्रतधारी—ब्रह्मचारी—मर्यादापुरुषोत्तम राम की पवित्र नगरी में यह नारकीय काण्ड! आश्चर्य्य! महा आश्चर्य्य!

धर्म के नाम पर यह पापाचरण? दिन दहाड़े इतनी नीचता? हिन्दुओं! ज्ञानान्धों! झूठी भक्ति के पीछे अपने को बर्वाद करने वाले, प्रपञ्च-पूर्ण धर्म के पीछे अपनी वहू-वेटियों के अमूल्य सतीत्व को बात-की-बात में लुटा देने वाले हीजड़ों! मिथ्या धर्म की मर्यादा में इन अत्याचारी संडे-मुसंडे दुराचारी साधुओं के पीछे अपनी गाढ़ी कमाई को पानी में वहा देने वाले बुद्धिहीनों देखो, आँखें खोलकर देखो—अपने इन धर्म-गुरुओं की काली करतूतें! इन अत्याचारी नारकीय नरमुण्डों की काली करामातें! देखो!!!

भीड़ जम गई। आदमी पर आदमी गिरने लगे। कहीं तिल भर भी पृथ्वी नहीं बची। मारे धक्कों के स्त्रियाँ बेहाल हो गईं। रामभक्ति में डूबी हुई नवयुवतियाँ और बाँकी प्रौढ़ायें चिल्लाने लगीं। यह क्या? दस-दस पाँच-पाँच मुसण्डों की टोलियों ने खींच-खींच कर नवयुवतियों को अपने गोल में कर

लिया। हाय ! अब तो आगे और पीछे दोनों ही ओर से धक्के लगने लगे। देवियों ! रामभक्ति का मजा लूटो। धक्कों के समय अवश्य ही तुम्हें राम के साक्षात् दर्शन होते होंगे ? क्यों ठीक है न ?

मुसण्डों ने सतियों को धक्के देकर ही नहीं छोड़ा, बल्कि उन दुष्टों ने उनके साथ भयङ्कर अमानुषिक कर्म किये। हाय ! उस अपार जन-समुद्र में देवियों की चोलियां मसक गईं, सहस्रो की कंचुकियाँ धज्जी-धज्जी उड़ गईं। लेखनी तू भी आगे नही लिख सकती। इन कालनेमियों की काली करतूतों को स्पष्ट लिखने में तू सर्वथा असमर्थ है।

हृदयहीन समाज ! भक्ति के पीछे पागल बन जाने वाला अज्ञानी नीच समाज ! क्या तुमने कुछ देखा ? अभी वही दृश्य हो रहा है। यदि तेरी इच्छा है तो वह देख ! तेरी कुल ललनायें अत्याचारियों के धक्कों से पिसी जा रही हैं। तेरे कुल-गुरुओं का दल, जिसे तूने मलाइयाँ खिला-खिला कर मुसण्डा बना छोड़ा है, मद में मतवाले हो आज बलबला-बलबला कर सारी कसर तेरी बहू-बेटियों पर निकाल रहे हैं।

अरे समाज ! अभी तू ताक ही रहा है—तेरी आँखे नही भरी ? यह असह्य अत्याचार देख अब भी तेरी नपुंसकता नही गई ? क्या सचमुच तेरा रक्त शिथिल हो गया है ? ओह ! यह तो पूरा हीजड़ा बन गया। निश्चय ही यह समाज अपनी स्त्रियों और बालको की रक्षा करने में सर्वथा असमर्थ हो गया—

सामने ही बहू-बेटियों को लुटते देख रहा है, परन्तु इसके कान पर जूँ तक भी नही रेंगती।

मुसण्डों ने मेले में घूम-घूम कर बिगड़ैल साँड़ों के समान खूब अत्याचार किया। निःसन्देह सहस्रों ललनायें बरबस दूषित हुये बिना नही रहीं। अब अत्याचारी नामधारी मुसण्डे मन्दिर की ओर बढ़े। भीड़ को चीरते हुए सैकड़ों की संख्या में मन्दिर के प्रधान द्वार को पार कर एक अन्धकारमय पतले स्थान में जा डटे।

भीड़ लाखों की थी, परन्तु द्वार एक ही था और वह भी एक दम तङ्ग। लगा, कचूमर निकलने। आदमी-पर-आदमी चढ़ चले, स्त्रियों की भारी दुर्दशा थी। इस मिथ्या धर्म पर अपने को उत्सर्ग करने वाली कुल-ललनायें हाय हाय करने लगी। सङ्गी-साथी छूट गये, सब अलग-अलग हो गये। घर के माता-पिता या सास-ससुर अथवा पति और भाई इस धक्कमधुक्की में पृथक् हो गये। बेचारी अबलाएँ भयानक विपत्ति में पड़ गईं। इस अपार जन-समुद्र में उनकी क्या दुर्दशा होगी? पाठक स्वयं विचार कर सकते हैं। देखिये आगे क्या-क्या होता है?

मन्दिर विशाल था, इसमें हजारों साधु रहते थे। मन्दिर के महन्त अभी नवयुवक ही थे। मन्दिर में समाज के पुरुषों ने करोड़ों की सम्पत्ति दान की थी। भक्तजन लाखों रुपये प्रति वर्ष भेंट करते थे। मन्दिर—मन्दिर ही नहीं था, वह सैकड़ों गाँवों का राज्य था। अपने को ब्रह्मचारी, सदाचारी,

सद्विचारी तथा रामभक्त कह कर सम्बोधन करने वाले सहस्त्रों तिलकधारी वहाँ रात दिन डटे रहते थे।

वह राम और हनुमान-मन्दिर प्राचीन था। उसकी ऊँची-ऊँची दीवारें तथा सैकड़ो गुप्त तहखाने यह बतला रहे थे कि कभी यह किसी राजा का दुर्ग रहा होगा। उसके गुम्बजों को देख कर सहसा यह बात हृदय में उदय हो उठती थी कि प्राचीन राजाओं ने दुर्ग के रक्षकों की रक्षा के लिये इन गुम्बजों को बनवाया था। नि सन्देह इसके आड़ में होकर किले का एक सैनिक भी बाहर के सौ शत्रुओं का सामना कर सकता था।

मन्दिर खचाखच्च भर गया। आदमी-पर-आदमी चढ़ चले। ओह! यह क्या? कई कामी कुत्तों ने एक सुन्दरी नवयुवती को अपनी ओर खीच लिया—यही स्थान अन्धकारमय था जहाँ सण्डे-मुसण्डे डटे थे। युवती बरबस खीन्च ली गई। ओह! देखते-ही-देखते वह अत्याचारियों के गोल में गायब हो गई। इन कामी कुत्तों की दृष्टियाँ सुन्दरियों पर डटी थी। दिन का अवसान होते-होते बीसों ललनायें इन पापियों के चक्र में जा फँसी।

सन्ध्या का अवसान हुआ, रात्रि आ गई; परन्तु भीड़ में किसी प्रकार की कमी नही हुई। इस निशा में निशाचरों ने बड़ा उत्पात मचाया। हा! लेखनी सहम उठती है। पापियों ने सहस्त्रों सुन्दरियों को उनके परिवार के लोगों से अलग कर दिया—एक नही, अनेकों तरुणियों को उनके पति और पिताओं से पृथक कर दिया।

मन्दिर के भीतर का रहस्य और भी विचित्र था। सैकड़ों कामी इधर-उधर व्यर्थ घूम रहे थे। सैकड़ों भगवान की झाँकी वाले मन्दिर में,—हा! प्रत्यक्ष मर्यादापुरुषोत्तम राम और हनुमान के सामने भ्रष्टाचरण कर रहे थे। क्या किया? समाज! तूने नही देखा? मन्दिर के बाहर चल कर देख! तेरी सैकड़ों देवियों की साड़ियाँ फट गईं, हजारों की चोलियाँ मसक गईं। हाय! हाय! कितनी ही नवयुवतियों (अधकलियों) अछूती देवियों की साड़ियाँ खून से तर हो गईं।

पापी समाज! तेरे पतन का अन्त नहीं। अरे! राम और महावीर के मन्दिर में यह कुकर्म! हरे हरे! नैष्ठिक ब्रह्मचारी के पवित्र धाम में यह नारकीय कुकृत्य! मर्यादा पुरुषोत्तम की मातृभूमि में यह पापाचरण। समाज! तेरा शीघ्र नाश होगा। तेरे पूर्वजों की कीर्तियाँ अतीताकाश में लुप्त हो जायँगी। तू निश्चय ही एक-न-एक दिन भविष्य के अन्धकारावृत विशाल गह्वर में विलीन हुए विना नही रहेगा।

आधी रात होते-होते जनरव मिटने लगा। भीड़ कम हो गई। अट्टहासकारी जयनिनाद निशीथ की निस्तब्धता में विलीन हो गया। हर्षोल्लास और प्रेम-उमङ्ग की घटायें हट गईं, परन्तु कुछ ही क्षण पश्चात् अम्बर सहस्रों दीन-आत्माओं की करुण पुकार से काँप उठा। वास्तव में इस आर्त्तनाद ने सबों को चौंका दिया—आज इस आनन्द के दिन में, सहस्रों आत्मायें क्यों कहर उठी? समाज तनिक चलकर देख तो सही।

हाय ! हाय ! यह क्या ? अरे इस पुनीत धाम में यह अमानुषिक कर्म ? देख ! तेरी कितनी ही देवियाँ नकटी बनी रो रही हैं—हाय, सैकड़ों बूची बनी आँसू बहा रही हैं—एक नहीं अनेकों नाक-कान पकड़े चिल्ला रही है । कितनी तो सिर धुन-धुनाकर पछता रही हैं । तेरे सहस्रों सुपुत्र, अपनी-अपनी सुन्दरी स्त्रियों, बहिनें, बहुओं तथा बेटियों को गँवा कर हाथ मल रहे हैं । कितने ही अपने अबोध बच्चों को खोकर बालकों की तरह पिनपिना कर रो रहे हैं ।

समाज ! धर्म के नाम पर यह क्या हुआ ? यह किसका दोष है ? किसने स्त्रियों की नाकों से नथें खीचकर उन्हें नकटी बनाया ? किस दुरात्मा ने गहनों के लोभ से ललनाओं और बालकों की हत्यायें की ? किस नरपशु ने काम-पिपाशा के लिये तुम्हारी बहुओं और बेटियो को पथ-भ्रष्ट किया ? तू जानता है, नि सन्देह तू जान कर भी मौन है । वे तेरे ही अङ्ग हैं जिनकी ये काली करामातें दिखला रही है ।

कुछ ही क्षणो में वह धर्मप्राण नगरी आर्तनादों से गूँज उठी । लुटी आत्माओं के चीत्कारों से दिशायें काँप गईं । इन पीड़ितों की मूक आहें आकाश को चीरती हुई सच्चे राम के पास जा पहुँचीं । भगवान् राम ! तुम्हारी पुण्यनगरी की यह लीला ? एक समय था, जब तुमने कठोर पत्नीव्रत धारण किया था, लक्ष्मण ने वन में १२ वर्ष साथ रहते हुए भी सीता का मुँह नही देखा था । समाज के प्यारे राम ! देश

के जीवनाधार राम !! भारत की पुरानी नैया के खेवैया राम !!! यह तुम्हारे उसी धाम में, जहाँ से तुमने त्रिताप को मार भगाया था, अश्वमेध के पुनीत यज्ञ-जल से जिसका कोना-कोना सींचा था—हाय ! वहाँ तुम्हारे पवित्र नाम पर दुराचारियों का दल वहू-वेटियों को—निःसन्देह तुम्हारी ही वहू-वेटियों को भ्रष्ट कर रहा है।

राम ! क्या यह तुमसे छिपा है ? क्या तुम अब अन्तर्यामी नहीं रह गये ? तुम्हारी सर्वज्ञता जाती रही अथवा तुम भक्तो से रूठ गये ? क्या बात है ? निःसन्देह तुम भक्तों से रुष्ट हो गये, इसका कारण भी प्रत्यक्ष है,—तुम्हारे भक्तों ने भक्ति का मार्ग भुला दिया। यथार्थ भक्ति का स्वरूप हृदय से जाता रहा। अन्ध-परम्परा और अन्ध-विश्वास ने उन्हें सतपथ से डिगा दिया। पुनीत भक्ति केवल धर्म का ढोंग रह गया तभी तो उस पुनीत धाम में इस दारुण दुर्दशा का ताण्डव नृत्य हो रहा है।

× × × ×

सवेरा होते ही स्त्रियों की लाशें मिलने लगीं। कितनी ही सुन्दरियाँ झाड़ियों में तथा कितनी ही सरजू के रेतीले मैदानो में पड़ी हुई पाई गईं। कितनी तो अधमरी हो रही थीं और कितनी ही इस नरक लोक से चल वसी थीं। कई मृतक युवतियाँ अस्पताल में लाई गईं। समाज ! उनकी मृत्यु का कारण तू अभी तक जान सका अथवा नहीं। उन सण्ड-मुसण्डों

ने ही तेरी फूल सी ललनाओं को सुखा दिया। हाय ! किसी-किसी युवती के उदर से आधा-आधा सेर तक वीर्य निकला। अर्द्ध मृतक युवतियों ने कराहते हुए स्पष्ट कहा—"हम एक एक के ऊपर तीस-तीस चालीस-चालीस अत्याचारी बाबाओं ने बरजोरी हाथ-पैर बाँध-बाँध कर मनमाना कुकर्म किया है।

साधुओ ! बाबाओ ! हिन्दू समाज की नैया को पार लगाने वाले सज्जनो ! क्या यही साधुओं का कर्म है ? संसार के सामने समाज को कलंकित करने वाले नराधमो ! क्या यही तुमने कामिनी और काञ्चन का त्याग किया है ? ये तुम्हारी ही बहू-बेटियाँ हैं। अपनी पुत्रियों से व्यभिचार करने वाले नीचो ! तुम मनुष्य हो ? ये तिलक और छाप बेकार है। अपने कुकृत्यों से तुम अपना ही नहीं—अपने समाज का ही नही—प्रत्यक्ष ईश्वर का अपमान कर रहे हो।

क्या यही साधुता है ? क्या इसीके लिए तुमने वैराग्य धारण किया था ? जब कामिनी और काञ्चन से ही तुम्हें प्रेम करना था, तो फिर तुमने यह बिचोटी क्यों लगाई ? धर्म-प्राण हिन्दू-जनता की आँखों में धूल क्यों झोंकी ? हत्यारो ! निशाचरों से बढ़ कर तुम्हारी दुर्गति होगी।

सन्तो ! महन्तो ! स्वामियों ! तुम खूब बदनाम हो चुके। अरे ! तनिक सोचो तो, तुम्हारे पूर्वज पत्तियों को खाकर अज्ञात जंगलों में रह कर भी काम को नही रोक सके; तथापि उन्होंने तुम्हारे समान अत्याचार नही किया। संसार की बहू-बेटियों को

अपनी बहू-बेटियों के समान समझते थे, परन्तु तुम कैसे कुल-ङ्गार हुए ? माता-माता कहते हुए तुमने युवतियों को नष्ट-भ्रष्ट कर दिया। मातृभोगियो ! तुम्हारे पापों से पृथ्वी दबी जा रही है। तुम्हारा मुँह देखना, ब्रह्महत्या से बढ़ कर पाप है।

परन्तु नहीं, तू उतना दोषी नहीं। समाज ने ही तुझे खिला-खिला कर बिगाड़ा है—इस नीच समाज ने ही तुझे व्यभिचार करने के लिए बाध्य किया है। यदि समाज, समाज होता, अन्ध परम्परा और अन्ध विश्वास के गहन वन से पार हो जाता, अज्ञानी; अपनी कुरीतियों को समझ जाता। हाय ! निर्वीर्य समाज में यदि वीर्य का सञ्चार हो आता, यदि सचमुच समाज का यह हीजड़ापन दूर हो जाता, तो तेरी क्या मजाल थी कि तू उसकी बहू-बेटियो की ओर आँख उठा कर देखता। तेरी आँखें निकाल ली जाती। यदि तू कुछ बोलता तो तेरी जिह्वा खींच ली जाती। यदि तू धन का अभिमान दिखाता तो सीधे कान पकड़ कर मठों से बाहर कर दिया जाता। इतने पर भी यदि तेरी उद्दण्डता नही जाती तो निश्चय ही समझ रख—प्रतापी समाज तेरी बोटी-बोटी कुत्तों के आगे डाल देता।

कल दोपहर से आधी रात तक ५२२ स्त्रियाँ और अबोध बच्चे गायब हुए। साथ ही विशेषता यह थी कि खोने वाली किसी भी सुन्दरी की अवस्था बीस वर्ष से अधिक न थी। कोई भी अभी सन्तानवती नही हुई थी। कितनी बेचारी तो

अछूती कली ही थी। जिन्हें उद्दण्ड सण्डे मुसण्डे तिलकधारियों ने बरबस खींच-खींच कर मठ के गुप्त तहखाने में पहुँचा दिया।

तहखाना भारी था। उसमें एक नहीं सैकड़ों कमरे थे, दो-दो चार-चार स्त्रियाँ एक-एक कमरे में बन्द कर दी गईं। कुछ ही देर के बाद सैकड़ों मुसण्डे अपनी कामाग्नि शान्त करने के लिए तहखाने में उतर पड़े। ऊपर घोर जनरव हो रहा था और नीचे स्त्रियों के चीत्कार से तहखाना भर्रा रहा था, परन्तु उनकी दर्द भरी आवाजें दीवारों और छतों से ही टकरा कर रह गईं।

साधुओं ने अत्याचार का अन्त कर दिया। एक-एक बालिका पर बीस-बीस टूट पड़े। हा! इन नर-पिशाचों के अमानुषिक व्यवहार से बीसों सुन्दरियाँ तत्काल मर गईं तथा सैकड़ों रक्त से लथ-पथ हो उठीं। आधी रात तक यह जघन्य कर्म होता रहा। सन्नाटा होते ही मृतक तथा मृतप्राय लाशें गुप्त द्वार से बाहर कर झाड़ियों और सरयू के रेतीले मैदानों में डाल दी गईं—सौ-पचास अछूती कलियाँ जिन पर महन्त की दृष्टि गड़ गई थी–जिन पर अत्याचारियों ने अत्याचार नहीं किया था—भविष्य के लिये रोक ली गईं। उनके खाने-पीने की सामग्रियाँ, उस तहखाने में रख दी गईं। इस प्रकार भोर होते-होते उस तहखाने का भारी दर्वाजा बन्द कर दिया गया।

अपने को बन्धन में देख स्त्रियाँ रोने लगीं, परन्तु अब क्या हो सकता है? काल के बन्धन से छूट जाना सहज है, परन्तु

इस गुप्त तहखाने से निकल जाना साधारण ही नहीं वरन् टेढ़ी खीर है। उनके रक्षक यहाँ तक नही पहुँच सकते, वे सब छावनियो में पड़े हाथ मल-मल कर रो रहे है।

माताओ! बहनो! मेले-मदारों में चमक-चमक कर घूमने वाली बहुओ! घर में हाथ भर का घूँघट डालने वाली लजीली देवियो! मेलों में पहुँचते ही घर की लज्जायें कहाँ चली गई? देखो, आँचर उड़ा जा रहा है, सर पर वस्त्र नही है, तुमसे लज्जा-निवारण भी नही हो रहा है? हँसती, इठलाती, मचलती और बुरे-बुरे गीत गाती अपनी हमजोलियों के साथ क्या ही छमछमाती जा रही हो। इस अवस्था में तुमने तो अपने तन की सुधि भी भुला दी। भला ऐसी दशा में कामी-कुत्ते क्यों न भड़क पड़ें? दुष्टों का दल क्यों न इस बेशर्म औरतों को लूट ले?

दुलारी सुन्दरियों! मेले का फल मिला? भगवान राम के पवित्र धाम में तुम लोगों ने क्या पाया? योग या भोग? मुक्ति या अनुरक्ति? स्वर्ग या नर्क? इस रामनवमी के मेले में क्या मिला? बड़े उत्साह से आई थी। उमङ्ग में भरी कूदती हुई गाँव से चली थी। घर के लोगों के रोकने पर भी हठ से नही हटी थी—हा! आज सभी मठाधीश की बन्दी बनी हो।

मेला और तीर्थ स्त्रियों के लिए नही हैं—स्त्रियों का सच्चा तीर्थ तो उसकी पति-सेवा ही है। पतिभक्ति से ही उसे सभी तीर्थों का फल घर बैठे मिलेगा। पति ही स्त्रियों का राम

है, वही उसका ईश्वर है, वही उसकी सद्गति है । निःसन्देह पति ही स्त्रियों की मुक्ति का कारण है ।

आज भारत से वह पूर्वीय पति-भक्ति का भाव उठता जा रहा है। एक समय था जब स्त्रियाँ पति की आज्ञा से अपने को जीवित जलाने को तैयार रहती थी । उसके संकेत मात्र से अपने को अग्नि की प्रज्वलित ज्वाला में भस्मीभूत कर देती थी तथा उसकी आज्ञा को ही ईश्वर का आदेश समझती थी। परन्तु शोक ! भारतीय नारियाँ पूर्वीय सिद्धान्तों से अब गिरती जा रही है।

अब तो बात-बात में पति से लड़ती है। उसके मना करने पर भी मेले मदारों के लिये तैयार रहती है। ठीक है, उन्हीं अपराधों का यह सब दण्ड है। समाज ! पहले गृह-देवियों को अपने आधीन कर, उन्हें योग्य शिक्षा दे, मेले-मदार जहाँ दिन-दहाड़े गुण्डे फिर रहे हैं, वहाँ उन्हें मत भेज, और न उन्हें साथ ले ही जा।

दस बजते-बजते अयोध्या की चौकी फरियादी यात्रियों से भर गई। सैंकड़ों रिपोर्टें लिखाई गईं । यात्रियो ने अपनी बहू-बेटियों तथा स्त्रियों को ढूंढ़ने के लिये बहुत प्रयत्न किया; परन्तु सफल नही हो सके, लोगों ने सारा नगर ढूँढ़ डाला। गली-गली छान डाली गईं। झाड़ियाँ एक-एक करके खोज ली गईं। सरजू का रेतीला मैदान एक ओर से दूसरे छोर तक देख लिया गया; परन्तु एक स्त्री भी नहीं मिल सकी।

राजकर्मचारीगण और स्वयंसेवकों ने बड़ी चेष्टा की। मठ के भीतर बाहर सर्वत्र रत्ती-रत्ती स्थान देख लिया गया; परन्तु एक भी अभागिनी नहीं मिल सकी। समाज ! कितनी देवियाँ तुम्हारी हड़पी गईं ? कुछ सोचता है ?

हाय ! इस मेले में इतना ही अनर्थ नहीं हुआ। सैकड़ों स्त्रियाँ और बच्चे सरयू के किनारे भटक गये, अनेकों बाजारों में भूल गये तथा कितने ही, अज्ञात नगर की गलियों में अपने घर वालों के सङ्ग से छूट गये। आह ! कितनी भटकी स्त्रियाँ पण्डे पुजारियों के चक्र में पड़ी, कितनी यवनों के चंगुल में फँसी तथा कितनी ही फैजाबाद की वेश्याओं के जाल में जा पड़ी। सैकड़ों बच्चे विधर्मियों के आखेट हो गये।

समाज ! धर्म के नाम पर अपने को खो देने वाला, तीर्थों की अन्धपरम्परा पर अपनी बहू-बेटियों को लुटा देने वाला, हाय ! देख, सैकड़ों आत्मायें पवित्र नगरी अयोध्या को कोसती हुई, तुझे गालियाँ देती हुई, तेरे नाम पर थूकती हुई, चली जा रही हैं। सैकड़ों मातायें छाती पीटती तुझे शाप देती हुई वह देख—बिलख-बिलख कर आँसू बहाती हुई, अयोध्या को लात मार रही हैं।

समाज ! तेरी ही निर्बलता के कारण आज राम के भक्त राम को गालियाँ दे रहे हैं। मर्य्यादापुरुषोत्तम भगवान के भक्त उन्हें कोसते हुए अपने-अपने घरों को लौट रहे हैं। हा ! इतना हो गया—धन और धर्म सभी जाता रहा—अरे सबसे

अमूल्य धन जिसके लिये तुम्हें मर मिटना चाहिए था। बात-की-बात में लुट गया। परन्तु तू हीजड़ों की तरह मुँह बाये खड़ा ही रहा !!! हाय ! इतना अनर्थ मच गया, परन्तु तेरा शिथिल रक्त नही उबल सका ?

भारत की सैकड़ों निरपराध अबलायें तहखाने में पड़ पड़ी नारकीय यन्त्रणायें भोग रही थीं। शहर में शान्ति हो जाने पर तहखाने का द्वार खोला गया। महन्त और उनके अनुचर निर्भयता पूर्वक आने-जाने लगे। धीरे-धीरे उन कामियो ने सभी ललनाओं को भ्रष्ट कर दिया। जिन बालिकाओं ने अपने सतीत्व-रक्षा की चेष्टा की, वे मारपीट कर सीधी कर दी गईं अथवा सीधे यमलोक भेज दी गईं। हाय ! उन बेचारी कुल-बधुओं की लाशें सरयू मे उतराती हुई मिलीं।

उस राम के मन्दिर में व्यभिचार का बाजार गर्म हो गया। व्यभिचारियों ने वेश्याओं से भी बढ़ कर उन पर अत्याचार किया। बन्द तहखाने में रहने के कारण उन सबका स्वास्थ्य दिनोदिन गिरने लगा। कितनी बेचारी गर्भवती हो गईं; परन्तु ऐसी अवस्था में भी उन कामी कुत्तों ने अपना अत्याचार नही छोड़ा।

देवियाँ भोग की ज्वाला में झुलसने लगी। नित्य दस-दस पाँच-पाँच सण्डे-मुसण्डों का अत्याचार एक नवयुवती कब तक सह सकती थी ? कितनी ही ज्वर से आक्रान्त हो उठी और कितनी प्रदर और रज-दोष से पीड़ित हो गईं।

हाय ! दुराचारियों ने छूत-अछूत अवस्था का भी विचार नही किया।

सैकड़ों सुन्दरियों के गर्भवती होने पर साधुओं की आँख खुली। एक बार लोगों की अन्तरात्मा सिहर उठी; परन्तु निर्दय हृदय पिशाचों का दल कुछ ही देर में पुन: हर्षित हो उठा। उन लोगों ने गर्भवती स्त्रियों के लिए गर्भपात का आयोजन किया।

साधुओं ने गर्भपात कराने के लिए अनेक प्रयोगों का उपयोग किया। बड़ी-बड़ी दवाइयाँ खिलाई गईं। कुछ युवतियो के अस्वीकार करने पर उन्हें भयङ्कर-से-भयङ्कर दण्ड दिया गया। तीन-तीन दिन तक उन्हें कोठरियों में विना अन्न जल के बन्द रखा गया तथा पशुओं के समान बुरी तरह से पीटा गया। मार को डर से विवश हो देवियों को गर्भपात की औषधियाँ खानी ही पड़ी।

हा! तीव्र औषधि के प्रभाव से पचीसों युवतियों के बालक पेट से बाहर हो गये। साधुओं ने गुप्त द्वार से उन्हें निकाल कर सरयू में जा बहाया; परन्तु कितनी ही अभी ऐसी भी रह गई थी, जिन पर औषधियो का प्रभाव नहीं पड़ा था। साधुओं का दल यह कब देख सकता था ? उन सबों ने अबलाओं को पटक-पटक कर उनके पेटों को लातों से खूब रौंदा; परन्तु इतना होने पर भी गर्भपात नही हुआ।

एक-पर-एक दवाइयाँ बदली जाने लगी। नित्य एक-से-एक

बढ़ कर तीक्ष्ण औषधि का प्रयोग होने लगा। स्त्रियाँ औषधि खाते-खाते ऊब गईं और साथ ही साधुओं का दल भी बुरी तरह घबड़ा गया।

उस अँधेरे तहखाने में बीसों स्त्रियाँ सूख कर काँटा हो गईं। अनेकों क्षय से पीड़ित हो घुल-घुल कर मरने लगीं। हा! कुछ ही दिनों के बाद केवल बीस गर्भवती स्त्रियाँ ही अवशेष रह गईं।

श्रावण का महीना आ पहुँचा। अयोध्या के घर-घर में भगवान हिंडोले पर झूलने लगे। इस मास में भी यात्रियों की कम भीड नहीं हुई। लाखों नर-नारी अयोध्या में धर्म लूटने के लिये आ पहुँचे।

रामनवमी दिन का मेला था; परन्तु झूलन की महिमा रात की ही थी। इस झूलन ने वास्तव में हिन्दू धर्म को झुला दिया। अयोध्या की अँधेरी गलियों में अन्धेर मच गया। हा! अत्याचार और व्यभिचार का अन्त हो गया। मानवीय कुकर्म ने निशाचरी कुकृत्य के कान काट लिये।

तीन दिन तक रात्रि बड़ी भयावनी हुई। दुराचारियों के अत्याचार से इन्दु मलिन हो उठा। तारे तेजहीन हो गये। शहर की बत्तियाँ धीमी पड़ गईं। सरयू भी उमड़-उमड़ कर बहने लगी।

रामनवमी के समान ही इस बार भी करारी भीड़ हुई। विशेषता यह थी कि रात्रि होने के कारण दुराचियों ने खूब

हाथ की सफाई दिखाई। सैकड़ों सुन्दरियाँ इस बार फिर उड़ा ली गईं। समाज का एक घाव तो अभी भरा ही नहीं, यह दूसरा तत्काल हो आया।

युवतियाँ उन्हीं कोठरियों में बन्द की गईं। बड़े-बड़े प्रलोभन देकर, डरा-धमका कर; मार-पीट कर सभी वश में लाई गईं। कितनी तो ऐसी भी थीं, जिन्हें अपनी रक्षा के लिये लाल किये हुए चिमटों की मार खानी पड़ी तथा छुरियाँ और सुइयों से सारा अङ्ग छिदवाना पड़ा।

सुन्दरियों को निवश होकर अत्याचारियों के आगे आत्म-समर्पण करना ही पड़ा। अब फिर व्यभिचार की अग्नि भड़क उठी। चार-पाँच महीने तक महा अनर्थ होता रहा। धीरे-धीरे इस बार की भी युवतियाँ कितनी ही गर्भवती हो गईं और कितनी ही मर मिटीं।

माघ आते-आते चैत्र की पकड़ी हुई सुन्दरियाँ सन्तान प्रसव करने लगीं। साधुओं ने इसका उचित प्रबन्ध रखा। उधर बालक उत्पन्न हुआ; तत्काल मार दिया गया और वह अन्धेरी रात्रि के आते ही सरयू के गर्भ में डाल दिया गया। इसी प्रकार एक के बाद दूसरे का हाल हुआ। धीरे-धीरे सभी पुरानी गर्भवती स्त्रियाँ अपनी सन्तानों को खो बैठीं।

समाज! इस बात पर तनिक आँसू बहा ले। अयोध्या! तेरी गोद में इतनी भयङ्करता? पवित्र धाम! तेरे वक्ष पर ऐसा ताण्डव? हाय! यह नङ्गा नाच! प्रत्यक्ष राक्षसों का वास!

शिशु-हत्या, भ्रूण-हत्या तथा गर्भपातादि सदृश्य अनघ पूर्ण कार्य्यों के अधिकारियों का निवास। हा ! राम की भूमि पर कुलाङ्गारों का ताण्डव !!

रमणियाँ गर्भ-पीड़ा से मुक्त हो गईं; परन्तु निशाचरों की यन्त्रणा से नही छूट सकी। दिन रात आँसू बहाना ही उनका काम था। धीरे-धीरे सभी एक के वाद एक गिरने लगी। तहखाना क्षय के कीटाणुओं से भर गया। वास्तव में व्यभिचार की अग्नि ने प्रभञ्जन को दूषित कर दिया। सभी स्त्रियाँ रोगिणी हो गईं।

सुन्दरियाँ व्यग्र थीं, झूले की फँसी हुई कोमलाङ्गी स्त्रियाँ अपनी मुक्ति में अहर्निशि लीन रहती थीं; परन्तु तहखाने का मोटा दरवाजा रात दिन वन्द होने के कारण। उन्हें कोई मार्ग नहीं मिलता था। अन्यथा वे एक पल भी वहाँ नही ठहर सकती थीं।

पापियों के पाप का घड़ा पूरा हो गया, लबालब भर गया। इन पापियों ने आज तक लाखों बच्चो की हत्यायें की होगी। हजारों देवियों को रुला-रुला कर मारा होगा। अब थोड़ा ही समय बाकी है जब इन अत्याचारियों का अत्याचार मिटा दिया जायगा। इनकी काली करतूतें संसार के सामने झलक पड़ेंगी। बच्चा-बच्चा इन हत्यारो के नाम पर थूकेगा। यही अयोध्यावासी इन महन्तों के चाँदी के वालों को जूते की नालों से साफ करेंगे।

धीरे-धीरे चैत्र का महीना आया—वही रामनवमी की पुनीत तिथि फिर आ गई। ठीक बारह बजे तहखाने का दरवाजा खोला गया। सभी सण्डे मुशण्डे स्त्रियों की खोज में निकल पड़े। दो तीन सुन्दरियाँ अपने कमरे में बैठी हुई रो रही थीं। एकाएक उनके कमरे में प्रकाश हो गया और ऊपर से हल्ला होता जान पड़ा। तीनों चकित हो उठ खड़ी हुईं और प्रकाश की ओर बढ़ीं। धीरे-धीरे वे तहखाने के द्वार से बाहर हो गईं। कोठरी के साधु ने समझा कि यह भीड़ से खींची हुई स्त्रियाँ हैं; परन्तु इन सबों का पीला चेहरा देख वह झल्ला उठा और नम्रता पूर्वक उन स्त्रियों से बोला—माता जी! इधर राममन्दिर नहीं है, इस कमरे से बाहर निकल जाइये। वह देखिये, भीड़ जा रही है। स्त्रियाँ चुपचाप निकल गईं—उस कठिन कारागार से मुक्त होने वाली सुन्दरियाँ बुद्धिमती थीं। बाहर होते ही भीड़ को चीरती हुई वे आगे बढ़ चलीं। कुछ ही दूर पर पुलीस की चौकी थी। अबलाओं ने वहीं जाकर अपनी आत्मकथा सुनाई। उनकी करुण कथा ने सबों को रुला दिया, परन्तु अन्त में राजकर्मचारियों को अत्यन्त हर्ष भी हुआ। आज उनका १८ वर्ष का कठिन परिश्रम सार्थक हो गया। जिन हत्यारों के भेद का पता लगाने में हजारों जानें गँवानी पड़ी थीं, आज वह भेद अनायास ही मिल गया।

दिन का अवसान हुआ। सन्ध्या होते-होते मन्दिर को

सिपाहियों, स्वयं-सेवकों तथा देश-प्रेमियो ने घेर लिया। यात्रियो की भीड़ रोक दी गई। चारो फाटकों पर सन्तरी नियुक्त कर दिये गये। पुलीस निर्दयता पूर्वक मन्दिर में घुस पड़ी—सर्वत्र हाहाकार मच गया।

मन्दिर के कुछ साधु बड़े ही चलता पुर्जा थे, पुलिस द्वारा अपने को घिरे देख भावी आशंका से दहल उठे। कितने तो अपने को यात्री कह कर मेले में जा मिले और कितने छत की दीवारें फॉद कर भाग निकले। साधुओ को इस प्रकार भागते देख पुलीस ने लोगों का मन्दिर से बाहर निकलना रोक दिया।

धीरे-धीरे जॉच होने लगी। राजकर्मचारियो ने साधुओं से तहखाने का हाल पूछा, परन्तु सबो ने डॉटते हुये कहा—यहॉ तहखाना है? साधुओं के स्थान में तहखाने की क्या आवश्यकता? हम साधुओं पर तुम लोगो की व्यर्थ ही सन्देह-दृष्टि रहती है।

पुलीस वाले धुन के पक्के थे। अबलाओं के बताये हुए चिन्ह से वे स्वयं तहखाना ढूँढ़ने लगे। कुछ ही देर में उन लोगों ने गुप्त द्वार को खोज निकाला। देखते-ही-देखते ८२ स्त्रियॉ बरामद की गईं। साथ ही तीन ऐसे कुओं का पता लगा, जिनमें सहस्रों बच्चो की हड्डियॉ और ठठरियॉ पडी हुई थीं। सैकड़ों साधु पकड़े गये। दुराचारी महन्त भी तहखाने के सण्डास में छिपा हुआ मिला।

पापियों के पाप का घड़ा आज फूट गया। नरपिशाचों को पूरा-पूरा दण्ड मिला। महन्त को अपने साथियों के साथ जेल की हवा खानी पड़ी। तहखाना भर दिया गया। राम-मन्दिर ट्रस्टियों के हाथ में सौंप दिया गया। समाज! कुछ समझ सका?—यह सब धर्म की आड़ में क्या हो रहा है?

२

पूर्वाभास

समाज ने अपना पूरा अधःपतन किया। बाल-विवाह और बहु-विवाह से कोना-कोना भर दिया। निःसन्देह इन रोगों ने ही इस बलवान, शक्ति-सम्पन्न समाज को बलहीन और निर्जीव बना डाला। इसका बल और वीर्य जाता रहा। शक्तियाँ छिन्न भिन्न हो गईं। ब्रह्मचर्य व्रत के छूटते ही उन्नति के चिन्ह जाते रहे।

ब्रह्मचर्य ही सर्वस्व है। वही बल, बुद्धि, पराक्रम, आयु तेज और ऐश्वर्य्य का कारण है। इस नीच समाज ने अपने हाथो से ही उसे खो दिया। कहाँ तो वीर्य-रक्षा करते हुए विद्याध्ययन का समय था और कहाँ यह भोग की शिक्षा

देने लगा। छोटे-छोटे अबोध बालकों को कामसूत्र का उपदेश देने लगा। उन बेचारे ज्ञानहीनों के गले में युवतियों को बाँध-बाँध कर, छिप-छिप कर नंगा नाच देखने लगा।

बालक नौ वर्ष का है, बालिका १२ वर्ष की है, वह संसार को कुछ समझती है। आनन्द और उमङ्ग को जानती है, काम उसके भीतर क्रीड़ा करने के लिये अवसर ढूँढता रहता है। परन्तु बालक अनाड़ी है, अभी वह नहीं जानता कि काम किसे कहते है तथा आनन्द किस पक्षी का नाम है? दो ही वर्ष पीछे बालिका उबल पड़ती है। वह काम के हिलोरे को रोकने में असमर्थ हो जाती है। समाज उसे अपने बालक पति को अपनाने की आज्ञा देता है। फिर क्या, वह उस अबोध बालक को अपने संसर्ग से सब कुछ बता देती है।

ऐं! यह क्या? बालक व्यभिचारी हो गया! अरे अभी तो इसका वीर्य भी नहीं पका है, फिर भी रात दिन वीर्य-पात कर रहा है। राम! राम! सत्यानाश! अब और कुछ ही दिन और बाकी हैं कि नारकीय समाज उस बालक के नाम पर 'राम राम सत्य' करेगा। बालिका की आकर्षण शक्ति अधिक है। कुछ ही दिनो में बालक शोष रोग का आखेट हो गया और उधर कन्या जवानी के मद में इठलाने लगी।

नवयुवती को इठलाते देख कामी कुत्ते टूट पड़े। पति से तृप्ति न होने के कारण काम-पीड़िता आनन्द के लिये—केवल भोग के सुख के लिये—अपने को किसी दुराचारी की गोद में सौंप

देती हैं। अब क्या, अपने उमड़े हुए जवानी के दिनों में कामी पुरुषों के हृदय पर वह मनमाना शासन करती है। गर्भ भी रह गया तो चिन्ता नही। बारह वर्ष का पति तो तैयार ही है।

युवती इधर बुढ़िया हुई और बालक किसी प्रकार मर पछड़ कर युवा हुआ। अब वह अपनी पत्नी की ओर नही देखता। नित्य नई नवेलियो की ढूँढ़ में घूमता रहता है। नि-सन्देह जिन दुराचारियो ने इसकी स्त्री को इठलाते देख कलेजे पर हाथ रख कर अपवित्र दृष्टि से देखा था—उनकी बहू-बेटियो को इठलाते देख उन्हें हृदयेश्वरी बनाने के लिये जी जान से चेष्टा करता है और अन्त में सफल भी हो जाता है। वाह रे समाज! तेरे भीतर खूब खेल हो रहा है।

बस! दाम्पत्य-जीवन गया। स्त्री इधर आसक्त है और पुरुष उधर फँसा है। बाल-विवाह का यही परिणाम सर्वत्र दृष्टिगोचर होता है। समाज के सामने हम डङ्के की चोट से यह बात कह सकते हैं कि बाल-विवाह के कारण जितना दुरा-चार और व्यभिचार फैला है, उतना और अन्य कारणों से नही। देखो! युवती का रूप-माधुर्य्य हटते ही कामी कुत्ते उसे गन्धहीन पाकर भाग जाते हैं। पति, नई नवेलियों मे फँसा है। अब बेचारी क्या करे? विवश हो उसे किसी-न-किसी नीच पुरुष का संसर्ग करना ही पड़ता है।

गृहाश्रम का स्वर्ग-जीवन बात-की-बात में नरकार्णव हो गया। इतना ही नही, कितनी तो पतियों तथा सास-श्वसुरों के

अत्याचारों से भाग खड़ी होती हैं। उनके लिये वेश्यावृत्ति के अतिरिक्त और कोई साधन ही नही रह जाता।

वहु-विवाह से भी कम हानियाँ नही हैं। एक पुरुष है, परन्तु सात स्त्रियाँ उसके गले में बाँधी गई है। एक स्त्री की शक्ति नही, सात-सात स्त्रियों के पति बनते हैं। वर्ष दो वर्ष वीते कि स्तम्भन वटी की आवश्यकता आ पड़ी। हाय! काम-दण्ड हाथ में लिये पड़े-पड़े रो रहे हैं। अब ये स्त्रियाँ वेश्या न बनेंगी तो और क्या करेंगी?

बहु-विवाह ने व्यभिचार की अग्नि में घृत की आहुति डाल दी। काम-पीड़िता नव यौवनाओं ने लाखो नवयुवकों को रसातल में भेज दिया। समाज! तू स्वयं बहु विवाह कराता है और कुछ ही दिनों के पश्चात् उन सती-साध्वियों को व्यभिचार के क्षेत्र में आगे वढ़ा कर मन माना कुकर्म करता है। अरे, तू अपने लिये—केवल अपने लिये—उन्हें व्यभिचारिणी वना वेश्यालयों मे भिजवाता है।

नारकीय समाज! तेरा कैसे निस्तार होगा? कैसे तेरे वालक भीम और अर्जुन वन सकेंगे? पूर्वीय वल और बुद्धि तू कैसे पा सकेगा? वाल-विवाह और वहु-विवाह को अपने भीतर से शीघ्रातिशीघ्र दूर कर, ब्रह्मचर्य ही तेरी उन्नति का एक मात्र सोपान है, उसे धारण कर। निश्चय ही तू ज्ञानवान और बलवान वन जायगा।
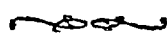
पापाचरण का वीभत्स दृश्य

ठाकुर विट्ठल सिंह का अक्लिसराय में बड़ा नाम था। छोटे-बड़े सभी इनसे डरा करते थे। किसी का साहस नहीं होता था कि ठाकुर के सामने तन कर खड़े हो सकें। आस पास के गाँवो मे पाँच कोश तक ठाकुर विट्ठलसिंह की बडी धाक जमी थी।

वास्तव मे विट्ठल बड़ा क्रूर मनुष्य था। वह प्रजा से बड़ी ही निर्दयता पूर्वक कर वसूल करता था। पांच रुपये का सौ रुपया विना लिये कभी पिण्ड नही छोड़ता था। बड़े-बड़े धक्काड़ उसका नाम सुनते ही काँप उठते थे। गरीबों का तो वह काल

ही था। इतने पर भी सूमड़ा एक नम्बर का था। उससे बढ़ कर कृपण होना कठिन ही नहीं वरन् पूर्ण असम्भव है।

विठ्ठल की तीन औरतें मर चुकीं; परन्तु पुत्र एक भी नही हुआ। वह दिन रात यही सोचा करता था कि यह अपार धन-राशि जिसे मैंने बाहुबल से उपार्जन किया है, मेरे बाद कौन भोगेगा। अतः पुत्र की लालसा से ४५ वर्ष की अवस्था में उसने चौथा विवाह किया।

इस बार ठकुराइन उसे बड़ी छटी मिली। वह विवाह के के पहले ही सत्तर घाट का पानी पी चुकी थी। विवाह के समय वह १९ वर्ष की पूर्ण युवती थी। ठाकुर विठ्ठल सिंह जो हजारों बलिष्ठ आत्माओं पर शासन करता था, ठकुराइन से परास्त हो गया। उलटे वही विठ्ठल के ऊपर शासन करने लगी।

स्त्री युवती थी, उसके अङ्ग-अङ्ग में मादकता भरी थी, उसका रोयाँ-रोयाँ फड़क रहा था। उस कामान्ध तरुणी के काम-दुर्ग पर विजय-दण्ड खड़ा करना साधारण काम नही था, विठ्ठल के निर्बल होने पर वह पतन की तीव्र धारा में वह चली। नारकीय समाज! देख अपनी दुर्दशा! अपने कुकृत्यों का प्रतिफल भोग।

हाय! ठकुराइन व्यभिचारिणी हो गई। घर के एक चमार हरवाहे के साथ उसका सम्बन्ध हो गया। अब क्या? मन-माना व्यभिचार करने लगी। विठ्ठल भी देख सुन कर टाल जाने लगा। गाँव में यह बात कहीं फैल न जाय इसलिए

विट्ठल स्वयं दोनों को प्रसन्न रखने लगा। कुछ ही दिनों के बाद ठाकुर के कान मे यह आवाज आई कि ठकुराइन का गोड़ भारी है।

काम की भूखी ठकुराइन गर्भवती हो गई। धीरे-धीरे महीने-पर-महीने बीतने लगे। बिट्ठल तो लड़के का भूखा था ही, चाहे धर्म से हो वा अथवा अधर्म से। उसे लड़का चाहिए था। नौ महीना बीतते ही ठकुराइन के गर्भ से एक सुन्दर बालक उत्पन्न हुआ। नि सन्देह ठाकुर का सूना घर जगमगा उठा।

सन्तानोत्पत्ति के उपलक्ष मे ठाकुर विट्ठल सिंह ने बड़ा उत्सव मनाया। तीन दिन तक दरवाजे पर डङ्का ही बजता रहा। धीरे-धीरे ११ दिन बीत गये। ठाकुर की चौपाल ब्राह्मण, भाट, साधु, अभ्यागत और भॉड़ो से ठसाठस भर गई। इस महोत्सव में ठाकुर अपनी कञ्जूसी भूल गया। उसने हजारो रुपये दान-पुण्य किये। गरीबो को लुटाया और जाति भाइयों तथा ब्राह्मणो को खूब हलुआ-पूड़ी खिलाया।

रात्रि में उत्सव का विशेष प्रबन्ध हुआ। रायबरेली की चमेलिया नाचने और गाने के लिये बुलाई गई तथा अब्दुल्ला को भी भॉड़ों की मशहूर मण्डली लेकर आने का निमन्त्रण दिया गया। आठ बजते-बजते सभी आ पहुँचे। महफिल सज गई। बड़े-बड़े रईस तथा निमन्त्रित लोग बैठ गये। विट्ठल भी मसनद लगा कर सामने ही जा डटे। थोड़ी ही देर में चमेलिया का घुँघरू बज उठा। वह छमछमाती हुई दर्शकों के

बीच में आकर खड़ी हो गई। बड़े अदब से उसने ठाकुर को सलाम किया और अपने सारंगियों को स्वर ठीक करने का सङ्केत कर आप बाबू-भाइयों की ओर तिरछी निगाहें चलाने लगी।

नाच आरम्भ हो गया। चमेलिया घूम-घूम कर महफिल में गाने लगी। कुछ ही देर के बाद बाबू-भाइयों का दल रुपये अठन्नी और चवन्नियों की वर्षा करने लगा। अब तो चमेलिया का दिल बढ़ गया। वह जिस बाबू भइया के पास पहुँच कर उसका कपड़ा पकड़ लेती उसे कुछ-न कुछ देना ही पड़ता था। इस प्रकार १२ बजते-बजते उसे सैकड़ों रुपये मिल गये।

अब भाँड़ों का समय आया। अब्दुल्ला स्वयं किलकारी मारता हुआ सबसे पहले उठा। इसके पश्चात् सभी एक साथ चिल्लाते हुये उठ खड़े हुए। देखते-ही-देखते सबों ने आकाश और पृथ्वी एक कर दिया। उनके अश्लील चिग्घाड़ से दिशायें काँप उठी, परन्तु समाज मस्त हो उठा। पापी समाज! भाँड़ों की बेहूदी गन्दी बातें भागवत से कम न थी। क्यों?

भोर होते तक सभी टर्राते रहे। बरसाती मेढ़क की तरह सबों ने रात भर लोगों को व्यर्थ जगा दिया। उन भाँड़ों का क्या दोष? यह तो समाज की हृदयहीनता है। इसका ध्यान तो समाज को होना चाहिये? इतने पर भी सैकड़ों बहू-बेटियाँ बड़े-बड़े पर्देवाली कुल-ललनायें पधारी थीं; परन्तु समाज को इसका क्या विचार? वह तो स्वयं पापी है और अपने अनुयायियों को पापी बनाना चाहता है।

भोर होते ही चमेलिया पुन भैरवी गाने के लिये उठी। आधी रात तक गाते-गाते वह पूर्ण थक चुकी थी; परन्तु लोभ ने उसे वलवान वना दिया। वह पुन सजधज कर महफिल में आ गई। इस वार उसके अधर पर मृदु मुस्कान थी। उसकी भौंहें इस वार अधिक चल रही थी।

शीघ्र ही उसका आलाप आरम्भ हो गया। धीरे-धीरे उसने गाना भी आरम्भ किया। सूरज निकल आया; परन्तु चमेलिया ने अपना गाना नही वन्द किया। दिन चढ़ते ही ग्रामीण खिसकने लगे। कुछ ही देर में भीड़ छट गई। चमेलिया को विवश होकर गाना वन्द करना पड़ा।

रण्डी और भाँड़ मनमाना इनाम पाकर चलते वने। आस-पास के गाँवो में भी इस उत्सव की चर्चा फैल गई। सभी ठाकुर की उदारता देख कर दङ्ग हो रहे थे। किसी को स्वप्न मे भी ऐसी आशा न थी कि ठाकुर पुत्र-जन्म के उत्सव पर इतना खर्च करेगा।

ठाकुर का निर्वंशी नाम छूट गया। इसे भय था कि मेरे वाद पुरुपे अवश्य नर्क मे चले जायँगे। उन्हें जल देने वाला अव कोई नही रहा। अव ईश्वर ने एक पुत्र भेज दिया है। ठाकुर के हृदय में यद्यपि प्रतिहिंसा की अग्नि धधक रही थी, परन्तु पुत्र, रत्न के सन्मुख वह तुच्छ थी। वह पुत्र, पुत्र चिल्ला रहा था। ठकुराइन ने उसे ला दिया। चाहे जहाँ से लाया हो, उसे तो पुत्र ही चाहिये था न!

धीरे-धीरे बालक छः महीने का हो गया। ठाकुर ने उसकी सेवा का समुचित प्रबन्ध किया, दूध पिलाने वाली धाय रखा। उसे दिन भर खेलाने के लिये मजदूरनी नियुक्त किया। बालक फूल सा खिल उठा। उसका सुन्दर मुख किसका हृदय नहीं आकर्षित कर लेता ? गाँव के छोटे-बड़े सभी उसे खेलाने लगे।

५६ वर्ष की अवस्था में ठाकुर साहब ने पुत्र का मुँह देखा। यही बालक उनकी वृद्धावस्था का सहारा था। वास्तव में उस अन्धे की यही लकड़ी थी। बालक पर ठाकुर का असीम प्रेम था। वह उसके बिना एक दिन भी कहीं नहीं रह सकता था।

धीरे-धीरे बालक डेढ़ वर्ष का हो गया। ठकुराइन अब फिर चञ्चल हो गई। इधर ठाकुर ने उस नवयुवक चमार को काम से छुड़ा दिया। ठकुराइन यह कैसे देख सकती थी। इस बार उसकी आँख गाँव के पटवारी के भाई से लग गई थी। वह ठकुराइन को भौजी-भौजी कहता हुआ नित्य एक बार ठाकुर साहब के घर पर आता था और घंटों एकान्त में बैठ कर ठकुराइन से बातें किया करता था।

दैवात् एक दिन ठाकुर साहब रायबरेली कचहरी गये। इधर ठकुराइन पटवारी के भाई के साथ गहना वगैरह तथा नगद १० हजार के नोट लेकर ११ बजे के पसिंजर से काशी की ओर चल पड़ी। उधर चार बजे तक ठाकुर साहब कचहरी में डटे रहे और इधर चार बजे ठकुराइन अपने यार के साथ काशी की गलियों में आश्रम के लिये चक्कर काटने लगी।

साँझ होते-होते ठाकुर साहब मोटर से गाँव में पहुँचे। घर जाते ही देखा तो ठकुराइन नहीं। बच्चा धाय की गोद में बिलख रहा है। उन्होंने धाय से पूछा, बच्चा की माँ कहाँ है? धाय ने कहा—ठाकुर साहब! बबुआ की माई तो आज दस बजे ही पटवारी के घर गई है। अब तक उनका पता नहीं है। बचवा अभी थोड़ी देर से रो रहा है।

ठाकुर साहब ने मजदूरनी को पटवारी के यहाँ भेजा, परन्तु वहाँ क्या था? बेचारी लौट आई। अब तो ठाकुर साहब का माथा ठनका। वे अपने कमरे में गये। सन्दूक खोल कर देखा। हाय! नोटों के पुलिन्दे और गहने की पेटी गायब हैं। हाय! कह कर गिर पड़े। घंटों बेहोश रहे। घंटा रात बीतने पर हाय! हाय! करते हुये कमरे से बाहर हुए।

सर्वनाश! इज्जत गई, आबरू गई और साथ ही धन भी गया। बैठकखाने में जाकर औंधे पड़ गये। उनकी आँखों के आगे अँधेरा छा रहा था। अपनी करनी पर उन्हें पश्चात्ताप हो रहा था; परन्तु सोचने से अब क्या होता है? चिड़िया तो उड़ गई। सैकड़ों कोस की दूरी पर अज्ञात गह्वर में जा छिपी। ठाकुर विठलसिंह हाथ मल कर रह गये। उन्होंने समझ लिया कि मेरे पतन की निशानी यही बालक है।

× × ×

ठकुराइन बाँस-के-फाटक के पीछे की गली में एक दो मंजिला मकान किराये पर लेकर रहने लगी। पटवारी का भाई पल्ले

दर्जे का शराबी था। यद्यपि ठकुराइन शराब से घृणा करती थी, परन्तु मना करके अपने नये यार का दिल दुखाना नही चाहती थी। दोनों बड़े प्रेम से रहने लगे। एक ही वर्ष में पटवारी के भाई ने दो हजार रुपया शराब और कबाब में फूँक दिया; परन्तु काम-पीड़िता ठकुराइन कुछ न बोली।

धीरे-धीरे चन्द्रग्रहण की तिथि आ गई। आज लाखों यात्री काशी में गंगा-स्नान के लिये आये थे। ग्रहण ११ बजे रात में लगने वाला था। ठकुराइन और पटवारी के भाई भी इस पुण्य के लूटने में पीछे नही पड़े। ठीक ११ बजते ही दशाश्वमेध की ओर चल पड़े।

बड़ी भीड़ थी। पुलीस का समुचित प्रबन्ध था। लोग घंटों मे किसी प्रकार घाट के किनारे पहुँच पाये। ग्रहण लग चुका था। सभी स्नान कर-कर के दान-पुण्य करने लगे। एक बज रहा था। अब थोड़ी ही देर में चन्द्र मुक्त होने वाला भी था, अत उग्रह स्नान के लिये सभी रुक गये। चन्द्रमा के मुक्त होते ही यात्रियों का दल पुन गंगा में पैठा।

अढ़ाई बजते-बजते सभी अपने-अपने स्थानों की ओर चल पड़े। ठकुराइन और पटवारी का भाई भी अपने डेरा की ओर चले। घंटों में भीड़ को चीर कर दरवाजे पर पहुँचे। परन्तु वहाँ क्या? दरवाजा खुला पड़ा है। ठकुराइन का हृदय धक से दहल उठा। उसके नेत्रों के सन्मुख भावी विपत्ति की आशंका थिरक उठी।

दहलते हुए हृदय से उसने घर में पाँव दिया। हाय! उसकी कोठरी का ताला भी टूटा हुआ था। अब वह अपने को और नही सम्हाल सकी। ढाढ़ें मार कर रो पड़ी। पटवारी के भाई ने भीतर जाकर देखा। वहाँ कुछ नही था; मय बिछावन तक लापता था।

भोगो! पाप का प्रायश्चित्त भोगो! अधर्म का दण्ड भोगो! ठकुराइन के लिए भारी विपत्ति का सामना था। अब तो उसके पास कुछ भी नही रह गया। किसी प्रकार रोते-पीटते सवेरा हुआ। घटना की सूचना पुलीस को दी गई; परन्तु कोई चोर पकड़ा नही गया।

दो चार दिन के बाद इन लोगों को भोजन का भी कष्ट होने लगा। ठकुराइन ने पटवारी के भाई से कहा,—प्यारे! अब कैसे काम चलेगा? तुम मर्द जात हो। कही घूमघाम कर नौकरी की तलाश करो। अब तो तुम्हारा ही आसरा है। अब एक दिन भी बैठने से काम नही चलेगा।

पटवारी का भाई बने का साथी था। इधर दो दिनों से उसे शराब भी नही मिली थी। वह बेचैन हो रहा था। ठकुराइन के बहुत कहने-सुनने पर विवश होकर उसे सायंकाल में नौकरी की तलाश में जाना पड़ा। परन्तु नौकरी कही रखी थोड़ी ही थी। दो चार-आदमियों से पूछताछ किया और बाद में दाल-मंडी होता हुआ कुञ्जगली की ओर झुक पड़ा।

कुञ्जगली काशी के व्यभिचार का प्रसिद्ध अड्डा है। सैकड़ों

बङ्गालिनें और देशी वेश्याएँ यहाँ काशी के नाम पर थूकती रहती हैं। पटवारी का भाई बड़ा चालाक था। उसने वेश्याओं की दलाली का काम करना आरम्भ किया। पहले ही दिन अपने प्रयत्न से उसने पाँच रुपया पैदा किया। डेढ़ की तो शराब उड़ा गया और दो रंडीबाजी में फेंक दिया। शेष डेढ़ रुपया लेकर नशे में झूमता झामता घर में आ पहुँचा। होश ठिकाने होने पर बड़े तपाक के साथ ठकुराइन से बोला—आज मैंने पाँच रुपया पैदा किया है; परन्तु टेंट में डेढ़ ही थे।

धीरे-धीरे इसकी दलाली चल गई। पाँच सात दस कमा लेना उसके बायें हाथ का खेल था। परन्तु शराब और नई-नई रंडियों की सोहबत बढ़ती ही गई। थोड़े ही दिनों में व्यभिचार ने इसे भयङ्कर दण्ड दिया। ठकुराइन का यार गर्मी और सूजाक का आखेट हो गया। हा! इन्द्रिय सड़ने लगी, पेशाब से मवाद जाने लगा। मूत्रकृच्छ्र के कारण उसे असह्य वेदना होने लगी।

ऐसे समय में ठकुराइन ने इसकी बड़ी सेवा की। धीरे-धीरे इञ्जे ्शन के प्रयोग से दुराचारी ठीक हुआ। अब फिर वह कुञ्जगली में चक्कर लगाने लगा। कुछ ही दिनों में कई दलालों से इसकी जान-पहचान हो गई। मित्रता बढ़ते ही यह दिन में भी उनके घरों पर आने-जाने लगा। दुष्टों का सङ्ग बुरा होता है। एक रात में कई दलालों के साथ एक जौहरी की दूकान में चोरी करने के लिये जा घुसा। भाग्य

प्रतिकूल था, पकड़ा गया। न्यायाधीश ने तीन-तीन वर्ष के लिए सबों को कठिन कारावास का दण्ड दिया।

पटवारी का भाई जेल चला गया। अब ठकुराइन बड़े फेर में पड़ी। घर वाले का दो महीने का किराया बाकी है। कौन देगा? कैसे निर्वाह होगा। पास में एक पैसा नहीं—किसका मुँह देखूँगी? हा राम! यह क्या—यह सोच ही रही थी कि मकान वाले ने पुकारा। मकान मालिक की आवाज सुन ठकुराइन दहल उठी। अब उसे अपनी मुक्ति की कोई भी युक्ति नहीं दिखाई पड़ी। ठकुराइन मौन हो रही। इतने ही मे मकान मालिक ने फिर पुकारा। दूसरी बार भी उत्तर न पाने पर वह मकान में घुस आया। अब ठकुराइन को बोलना ही पड़ा।

मकान मालिक को आज ही ठकुराइन के दर्शन का सौभाग्य प्राप्त हुआ था। वह इस रूप की परी को देख मौन हो रहा। उसके मुख से ये शब्द नहीं निकल सके कि किराया दो। वह उलटे पाँव लौट गया। घंटा रात बीतते ही एक गठरी लेकर वह पुन. आ पहुँचा और द्वार खटखटाने लगा। ठकुराइन ने पूछा—कौन है। मकान मालिक ने उत्तर दिया—किवाड़ खोलो और यह सामान रखलो। ठकुराइन ने किवाड़ खोल दिया।

द्वार बन्द कर मकान मालिक घर में गया। उसने गठरी खोल कर फैला दी। उसमे खाने-पीने के सभी सामान भरे थे। मकान मालिक एक दोने में कुछ बंगाली रसगुल्ले भी लेता गया था। उसने ठकुराइन से उसे खाने का अनुरोध किया।

ठकुराइन ने प्रथम तो अस्वीकार किया; परन्तु उसके विशेष आग्रह करने पर रसगुल्ले उड़ाने ही पड़े। मकान मालिक घंटों प्रेम की बातें करता रहा। ठकुराइन भी उसकी बातें सुन-सुन कर अपने शरीर की सुधि भूल रही थी। कुछ ही देर में कामाग्नि भड़क उठी। मकान मालिक ने अपनी बाहें फैला दीं—ठकुराइन सहर्ष उसकी गोद में जा बैठी।

ठकुराइन मकान मालिक की रखेली हो गई, परन्तु यह सम्बन्ध अधिक दिन तक स्थाई नहीं रह सका। मकान मालिक की आँख कुञ्जगली की एक अवयस्क मुसलमान रंडी पर जा गड़ी। अब उसने रात का आना बन्द कर दिया। हाय, बेचारी ठकुराइन फिर घबड़ा उठी।

आज ठकुराइन घर से निकाल दी गई। वह रोती-पीटती कुञ्जगली की ओर चल पड़ी। ५०० कदम जाने पर ही एक बुढ़िया ने उससे रोने का कारण पूछा। ठकुराइन अविरल आँसू बहा रही थी। बुढ़िया द्रवित हो उठी। उसने ढाढ़स देते हुए कहा—बेटी! चिन्ता न कर। मै भी तेरे ही समान विपत्ति की मारी, अत्याचारी समाज भी ठुकराई हुई यहाँ आई थी। यदि तू अनाथा है तो आ मेरे घर में रह। मेरी लड़की के अतिरिक्त यहाँ और कोई नहीं रहता।

ठकुराइन बुढ़िया के घर में पैठ गई। अब तो ठकुराइन उसी दिन से चमक कर कोठे पर बैठने लगी। नारकीय समाज! अपने कुकृत्यों का फल देख!!! वृद्ध-विवाह तथा बहु-विवाह ने

कैसी तेरी छीछालेदर की। अब भी तो चेत! अरे जिसमें पुंसत्व-शक्ति ही नहीं, जिसने तीन-तीन शादियाँ कीं, ५५ वर्ष का बूढ़ा हो गया, उसके गले में युवती को डाल कर तुमने क्यों अनर्थ किया? वंश में नाम धराया। इन सब अनर्थों की जड़ तू ही है।

× × × ×

इधर चन्द्रवदन—ठाकुर विट्ठलसिंह का पुत्र १० वर्ष का हो गया। ठाकुर ने बड़े प्यार से इसे पाला था। लाड़-प्यार के कारण वह कुछ पढ़-लिख भी नहीं सका; परन्तु इतने पर भी बीसों जमीदार उससे अपनी-अपनी लड़कियों का ब्याह करने के लिये आने लगे।

यथासमय डुमरी के बाबू नकुलसिंह की चौदह वर्षीया कन्या राधा के साथ चन्द्रवदन का गठबन्धन हो गया। अभागी लड़की बेचारी क्या जानती थी कि पिता अबोध बच्चे के साथ मेरी शादी कर रहे हैं। हा! विवाह के बाद ही वह ससुराल भेज दी गई।

चन्द्रववदन की स्त्री योग्य थी—पूर्ण वयस्क थी। नि सन्देह वह युवापन में पैर रख चुकी थी। उसका अङ्ग-अङ्ग उभर उठा था। कली खिल रही थी; परन्तु भौंरा नादान था। ऐसी स्थिति में उसके गंध को सुरभित पवन ले उड़ा, दिशाओं में उसकी गंध फैल गई।

विट्ठल बडा प्रसन्न था। पुत्र-वधू की सुन्दरता देख वह

आपे से बाहर हो गया। एक बार फिर ६६ वर्ष की अवस्था में उसकी कामाग्नि भड़क उठी। उस नीच हत्यारे के मुख में पानी भर आया। अब वह पुत्र-वधू को प्रसन्न रखने के लिए हजार उपाय करने लगा।

१५ दिन के लिये चन्द्रवदन निमन्त्रण में ननिहाल गया। घर पर केवल दो ही प्राणी रह गये। अब बूढ़े को स्वतंत्र राज्य मिल गया। वह सारा दिन पुत्र-वधू से प्रेम की बातों में गॅवाने लगा। धीरे-धीरे उसकी लज्जा भी जाती रही। एक दिन सायंकाल में बूढ़े ने उसे भङ्ग पिला दी। एक तो काम-मद उसे चूर ही कर रहा था, बूढ़े ने भङ्ग पिला कर और भी गजब ढा दिया। वह उन्मत्त हो पूर्ण लज्जाहीन हो बैठी। रात आते ही वह मद में मतवाली हो इठलाने और मचलाने लगी।

बूढ़े ने अच्छा अवसर पाया। उस बेचारी निर्दोष बालिका को अपनी ओर खींच लिया। सुध बुध तो थी ही नही, नराधम ने उसके अमूल्य सतीत्व को बात-की-बात में लूट लिया। हा! अमूल्य धन लुट जाने पर नवयुवती को होश हुआ। वह जँभाई लेते हुए उठ बैठी; परन्तु अपने को सम्हाल न सकी और उसी रात में पुन अपने सुन्दर शरीर को वृद्ध के हाथों में सौंप दिया।

अब तो वृद्ध की अभिलाषा पूरी हो गई। वह नित्य उसके साथ व्यभिचार करने लगा। चन्द्रवदन आ गया, परन्तु वह बालक था। दोनों उसे इधर-उधर भेज कर अपना काम कर लिया करते थे। धीरे-धीरे एक वर्ष बीत गया।

चन्द्रवदन की स्त्री मैके गयी हुई है। विट्ठल उसके लिये व्यग्र हो रहा है; परन्तु बिना शुक्रोदय हुए वह अब वहाँ से नही आ सकती। कामी बूढ़ा अपने पुत्र की ससुराल में इस अभिप्राय से जा पहुँचा कि पुत्र-वधू निश्चय ही लोगों की दृष्टि बचाकर मुझसे मिलेगी।

धीरे-धीरे रात हुई, लोग भोजन कर छत पर सोने के लिए जा पहुँचे। विट्ठल सिंह के लिए भी इनके कहने से अलग एकान्त में एक पलँग डाल दिया गया। आधी रात बीत गई, परन्तु पुत्र-वधू झाँकने के लिये भी नही आई। आधी रात बीत चुकी थी। सभी खर्राटे मार रहे थे, परन्तु बूढ़े की आँखों में नींद कहाँ थी।

ठाकुर साहब चारपाई पर से उठ बैठे और धीरे-धीरे घर में जा घुसे। खोजते-खोजते आँगन के पिछवाड़े में जा पहुँचे। आह! यह क्या? ठाकुर साहब ने क्या देखा? उनके पैर पत्ते की तरह काँप रहे थे। क्षण मात्र में ही वे सन्न हो गये। हाय! जिसके लिए आये थे, वह उनकी प्यारी पुत्र-वधू अपने युवक चचेरे भाई को हृदय से लगाये हुए स्वर्ग की सैर कर रही थी।

ठाकुर विट्ठल सिंह उलटे पैर लौट पड़े। इस बात का उनके हृदय पर बड़ा भारी धक्का पहुँचा। वे उसी रात में अकिलसराय की ओर पैदल ही चल पड़े। वे इतने दुखी हुए कि घर पहुँच कर ५ ही ७ दिन मे रौरव के लिए चल पड़े।

अत्याचारी बूढ़े का अन्त हो गया। चन्द्रवदन अभी बालक ही है। शुक्रोदय होते ही उसकी पत्नी मैके से आ गई। युवती ने इस अधखिली—नहीं-नहीं पूर्ण मुँदी कली को कुचल डाला। चन्द्रवदन कामी हो गया। अबोध बालक जिसे अभी वीर्य-रक्षा करना चाहिए था, वीर्य-पात करने लगा। उसकी उन्नति का मार्ग रुक गया। अब वह और आगे क्या बढ़ेगा?

चन्द्रवदन बालक था, उसकी पत्नि उससे सन्तुष्ट नहीं हो सकी। उसने अपने चचेरे भाई को, जो उसका प्रेमी था, बुला लिया। धनेश सिंह अपनी माता और बहिन के साथ आ पहुँचा। अब क्या था? व्यभिचार का बाजार गर्म हो उठा। चन्द्रवदन की स्त्री की मुरादें पूरी हो गईं। अब उसे योग्य प्रियतम मिल गया।

पाँच वर्ष राधा का समय बड़े आनन्द से कटा। इधर चन्द्रवदन भी नवयुवक हो गया। परन्तु राधा का सजा हुआ संसार बात-की-बात में उजड़ गया। उसका प्यारा धनेश हैजे के गाल में पड़ गया। अब क्या होता है?

अब राधा की ओर चन्द्रवदन का प्रेम नहीं था। इधर चन्द्रवदन १६ वर्ष का नवयुवक था और उधर राधा पूर्ण युवती थी। चन्द्रवदन की आँखें धनेश की बहन रुक्मिणी से लग चुकी थी। अभी वह तेरह वर्ष की अछूती कली थी। धनेश की मृत्यु होने पर उसकी माता और बहन चन्द्रवदन के यहाँ ही रह गई थी। यही अब उनके लिये घर था।

चन्द्रवदन दिनोंदिन रुक्मिणी की ओर आकर्षित होने लगा। रुक्मिणी ने भी इसके प्रेम पर अपने को लुटा दिया। राधा यह फूटी आँखों भी नही देखना चाहती थी; परन्तु क्या करती, विवश थी।

चन्द्रवदन ने रुक्मिणी से विवाह कर लिया। राधा मारे डाह के डुमरी चली गई। कुछ ही दिनों मे सबों ने सुना कि ठाकुर नकुलसिंह की लड़की राधा सन्तुआ वारी के साथ निकल गई। हाय रे! हत्यारा समाज! यह सब तेरे कुकर्मों का फल है। यदि तू इस प्रकार बाल-विवाह न करता तो तेरी ऐसी दुर्गति क्यों होती? समाज! नारकीय समाज! तनिक आँखें खोल और देख! तेरी राधा क्या-क्या करती है। वह सन्तुआ के साथ बनारस गई है और स्टेशन के पास वाले धर्मशाले में ठहरी है।

सन्तुआ राधा को लेकर उसी दिन गंगास्नान के लिए गया। बड़ी भीड़ थी। हजारों यात्रियों का रेल-पेल था। सैकड़ों धक्का खाते हुए लोग विश्वनाथ की गली में घुसे। बड़ी कठिनता से सन्तुआ राधा को दर्शन करा सका। अन्त मे साँझ होते-होते डेरे पर लौटा। दूसरे ही दिन दोनों उसी मकान में आकर रहने लगे, जिसमें चन्द्रवदन की माँ और पटवारी का भाई आकर टिके थे।

कुञ्जगली निकट ही थी। सौ ही कदम चलने पर वेश्या-लयों की सीमा आरम्भ हो जाती थी। सन्तुआ पल्ले दर्जे का

पाकिटमार और ठग था। नित्य वह सौ-पचास रुपये किसी-न-किसी प्रकार उठा ही लाता था; परन्तु उसका यह कार्य अधिक दिन नही चल सका। कुछ ही दिन के बाद वह लक्खीचौतरा पर पाकिट काटते हुए पकड़ा गया। इस घोर-अपराध में उसे ५ वर्ष के लिए कठोर कारागार का दण्ड हुआ।

अब नवेली राधा अकेली रह गई। वह ठकुराइन से कहीं बढ़कर सुन्दरी थी। ठकुराइन भी पास ही के घर में रहती थी। नित्य स्नान करने जाते समय वह राधा को खिड़की पर बैठी हुई देखा करती थी। धीरे-धीरे दोनों में बातें होने लगी। ठकुराइन ने एक दिन राधा का परिचय पूछा। उसने साफ-साफ कह दिया कि मैं अकिलसराय के ठाकुर विठलसिंह की पुत्र-वधू हूँ। यह सुनते ही ठकुराइन की आँखों में आँसू छल-छला आये।

सन्तुआ के जेल जाते ही राधा अपनी सास के पास चली गई। अब तो सारा मुहल्ला टूट पड़ा, साँझ होते ही इस मृगनयनी के रूप को देखने के लिये पतली गली में सैकड़ों की भीड़ एकत्र होने लगी। राधा पूर्ण पतिता हो गई। समाज! बाल-विवाह का परिणाम देखा?

पूर्वाभास

ओह ! इतना अन्धेर ! इतनी हृदयहीनता, इतना नंगापन ! जिसे देखकर कोई भी सहृदय बिना आँसू बहाये नही रह सकता। समाज ! तू नि सन्देह नीच हो गया। तेरी बुद्धि जाती रही। वह आत्मज्ञान तेरे हृदय से निकल गया। वह साम्य बुद्धि तथा अन्त करण की शुद्धि जाती रही। आज तू निरा खोखला बना हुआ ढोंग रच रहा है।

तेरे पूर्वज अन्धे नहीं थे, राम और कृष्ण पागल नहीं थे, वशिष्ठ और गौतम बुद्धिहीन नही थे। उन लोगों ने शूद्रों को अपनाया था, तेरे पूर्व-पुरुषों ने निषादों को हृदय से लगाया था, चाण्डालों को मुक्त किया था तथा शवरी को तारा था।

गया वे पुरानी बातें भूल गया। समाज! कालनेमि समाज! उन अग्रगण्य महारथियों के उद्देश्यों को तूने त्याग दिया। प्रमाद तथा स्वार्थवश उनके अमूल्य उपदेशों को बहा दिया।

तेरे रङ्ग-ढङ्ग विचित्र हो गये हैं। तेरी बुद्धि को पाला पड़ गया है। ईश्वर संसार को पवित्र बनाने वाला है। उसके संसर्ग से अपवित्र आत्माएँ पवित्र बन जाती हैं। नि सन्देह वह अपने प्रेमी भक्तों को शुद्ध बना देता है। चाहे शूद्र हो या ब्राह्मण, चाण्डाल हो या तपस्वी। जो उसका भक्त होगा, जो उससे प्रेम करेगा, वह अवश्यमेव उसका कृपा-भाजन बनेगा। उसके दर्बार में जाति की पूछ नहीं। ऊँच और नीच का विचार नहीं। उसका दर्बार सबके लिए खुला है। उसके सामने धन-वानों का धन, विद्वानों की विद्या, चतुरों की चतुरता, धूर्तों की धूर्तता, पाखण्डियों का पाखण्ड, अभिमानियों का अभिमान, बलवानों का बल तथा ऐश्वर्य्यवानों का ऐश्वर्य्य कुछ काम नहीं दे सकता। वह तो सबों को एक ही दृष्टि से देखता है।

हा! उसे भी तुमने तिलाञ्जलि दे दी। ईश्वर के मंदिरों में, राम और कृष्ण के उपासना-स्थलों में, धर्म-गुरुओं के भवनों में भी दुविधा लगा दी। शूद्र मन्दिरों में नहीं जा सकते। पूजा करना तो दूर रहा द्वार के भीतर प्रवेश नहीं कर सकते। हा! कितना बड़ा स्वार्थ है। क्या राम और कृष्ण, वशिष्ठ और गौतम, इन्द्र और कुबेर, लक्ष्मी और नारायण तथा गौरी और पार्वती द्विजातियों के ही हैं, शूद्रों के नहीं?

समाज यह तेरा भ्रम है। इन शूद्रों के बिना तेरा सारा द्विजातिपन हवा में उड़ जायगा। शूद्रो के न रहने पर तुम दूसरे ही भंगी बन जाओगे। तेरे चमकने के कारण ये शूद्र ही है। इन्हीके बल पर तू इतरा रहा है। शूद्रों ने ही तुझे बड़ा बनाया है। क्या तू उनकी सेवाओं को भूल गया? तेरे देवताओं ने जब उन्हें हृदय से लगाया है तब तू क्षुद्र, कीट एवं नारकी होकर उन्हें दुतकारने का क्या कारण रखता है? तुझे क्या अधिकार है? मै जानता हूँ कि तुम्हारी यह अनधिकार चेष्टा है।

अब आओ! इसके भीतरी रहस्यों पर विचार करो। शूद्राणी के मंदिर में आते ही तेरा धर्म भ्रष्ट हो गया, मन्दिर नष्ट हो गया और देवताओं की मूर्त्ति छू गयी। क्यों ठीक है न? यह बात सत्य है। आचारवान समाज, आज डंके की चोट यह कह रहा है न कि शूद्रों के मंदिर में प्रवेश करते ही मंदिर भ्रष्ट हो जाता है?

परन्तु यह तो बता कि शूद्राणियों के पीछे-पीछे फिरने में तुम्हारा धर्म कहाँ चला जाता है? भंगिनों और नीच से-नीच चांडालिनियों के साथ मुँह काला करने में तुम्हारा धर्म कहाँ रहता है? इन नरकरूपी वेश्याओं के अधररस पीने के समय अपने धर्म को किस स्वर्ग में भेज देते हो? समाज! बोलता क्यो नही। संसार की आँखो में धूल झोकता है।

तेरे बड़े-बड़े महन्त जिन्हें प्रातःकाल उठते ही तू दण्डवत् करता है। तेरी गृह-देवियाँ जिनका चरण-स्पर्श करने में अपना

अहोभाग्य समझती हैं। हा! वे तेरे कुलदेवता शूद्राणियों के पीछे अपनी मिट्टी पलीद कर रहे हैं। नित्य सायंकाल में चौक की हवा खा रहे हैं तथा सवेरे टट्टी की आड़ में भंगिनों का रूप-सौन्दर्य्य निरख रहे हैं। क्या कहें! लेखनी भी लिखने में लज्जित हो रही है। वह तुम्हारे समान निर्लज्ज नहीं है।

मीठा-मीठा गप्प और कडुआ-कडुआ थूक। वाह, क्या ही अच्छा विचार है। स्वार्थप्रिय समाज! सोच तो, क्या तुझसे भी बढ़ कर संसार में कोई अघी समाज होगा? क्या तुझसा जघन्य पापी अन्यत्र कहीं मिलेगा? कदापि नहीं, कभी नहीं, असम्भव है। नारकी समाज! तूने निशाचरों के भी कान काट लिये।

व्यभिचार से तेज और बल तो जाता रहा। विद्या और बुद्धि तो चली गई। धर्म और सत्य को तो मिटा दिया। अब शूद्रों को मंदिर में देख—धर्म गया, धर्म गया, चिल्लाते हैं। नीचों से पूछा जाय कि धर्म क्या छू देने से भ्रष्ट हो जाने वाली चीज है? धर्म का स्वरूप तो जानते नहीं। धर्म क्या है? यह भाव मस्तिष्क में जगा ही नहीं, परन्तु लकीर के फकीर बने, हाय धर्म! हाय धर्म! कर रहे हैं। नारकीय अधर्मी समाज! अब तो धर्म को समझ और उन शूद्रों को अपना, जिनके द्वारा तू उच्च बना रहेगा। अन्यथा इस भाँति के अपकर्मों से तेरा सत्यानाश हो जायगा। तू किसी ओर का भी नहीं रहेगा।

भक्ति का ढोंग

पितृपक्ष बीत गया—देवपक्ष भी धीरे-धीरे बीतने लगा। आज विजया का उत्सव है, जगत-जननी शुम्भ-निशुम्भनाशिनी, रक्तबीज विनाशिनी तथा महिषासुर संहारिणी शक्ति रूपा दुर्गा के विजय की स्मृति में लोग फूले नही समाते। कलकत्ता की गलियाँ 'माँ-माँ' के निनाद से पूरित हो रही हैं।

सर्वत्र शक्ति की मूर्ति स्थापित है। बंगाली ही नहीं; बिहारी, मारवाड़ी, उड़िया और उत्तरी भारत के अधिवासी भी, जो वहाँ रहते हैं, माँ के निनाद से दिशाओं को पूरित कर रहे हैं। सभी भक्ति भाव से माँ का विजय उत्सव मना

रहे है। बच्चा-बच्चा आज विजया के वीरत्व-सिन्धु-तरंग में गोते लगा रहा है। सभी के मुख से यह शब्द निकल रहे हैं।

विश्वेश्वरी विजया जया वीरत्व सिंधु तरङ्ग में।
कहते हुए 'जय चण्डिका' सर्वत्र प्रेमोमङ्ग में॥
आओ! करें मज्जन सभी हों दूर क्लैब्यादिक व्यथा।
वहने लगे तन में वही वीरत्व शोणित सर्वथा॥

मारवाड़ियों के गोविन्द भवन में भी विजया का विराट उत्सव था। वहाँ भी एक विजया की प्रतिमा प्रतिष्ठित की गई थी। भगवान गोविन्द का मन्दिर अमूल्य तथा अलभ्य वस्तुओं के द्वारा सुसज्जित किया गया था। आज सन्ध्या से ही गोविन्द भवन में मनुष्यों की भीड इकट्ठी होने लगी। देखते-ही-देखते जन-समुद्र उमड़ पड़ा। आज कालरात्रि के उपलक्ष में दुर्गा भवानी के सामने नगर की प्रसिद्ध नर्तकियों का नृत्य होने वाला था।

धत्तेरे समाज की। अरे मूर्खों! विजया के सामने और वेश्याओं का नाच! रण में ताण्डव करने वाली सिंहवाहिनी के सन्मुख दुराचारिणियों का स्वाँग। जगतजननी के सामने यह छीछालेदर। नारकीय समाज! यह क्या करता है? क्या विजया का उत्सव यही है? वीर जननी के सन्मुख कुलटाओं को नचाना ही तेरा उत्सव है?

मातेश्वरी दुर्गे! देख! तेरे कुलाङ्गार किधर वहते जा रहे हैं? रणचण्डिके! दुर्दण्ड दानवों के दुर्दर्प को वात-की-वात

मे नष्ट करने वाली वीर जननी ! अपने हीजड़े और कामी पुत्रों को देख। संसार से अन्याय और अत्याचार को मिटा देना ही तेरा उत्सव है। सम्पूर्ण शक्तियों को एकत्र कर पशुबल को उठा देना ही तेरी स्मृति है। दु खित संसार के लिए अपने हृदय का रक्त दान करना ही तेरी यथार्थ पूजा है।

माँ ! तेरे कुलाङ्गार आज वीर्य और बल को खो चुके हैं। सम्पूर्ण देवताओं के तेज से उत्पन्न हुई मातेश्वरी देख ! आज वह एकता कहाँ ? जिसके बल से तुमने महिषासुर जैसे अजेय दानवेन्द्र का दलन किया था। आज तो घर-घर में फूट फैली है। वीर सन्तानों के वंशधर भीरु और दुर्बल हो दुखी है, फिर भी तेरी विजय-स्मृति पर पुन्सत्व करने वाली, नारकीय बनाने वाली तथा धन-धर्म से हाथ धुलाने वाली नर्तकियों के नृत्य का आयोजन अवश्य कराते हैं।

अन्त में वह शुभ मुहूर्त, जिसमें विजया ने दानवों पर विजय किया था, आ पहुँचा। शक्ति ने दुराचारियों का वध करके पृथ्वी का भार हटाया था। नष्ट होते हुए धर्म को रोक कर बचाया था, देवताओं और विद्वानों के अपार दु खों को दूर किया था। हा ! उसीके सुपुत्रों का यह हाल है कि धर्म का नाश कर रहे हैं, पाप रूपी बोझों से वसुन्धरा को दबा रहे हैं तथा सर्वत्र दुराचार की लहर फैला रहे हैं। हाय ! इतना ही नही, नारकी अपने कुकृत्यों से विजया की कीर्ति-चन्द्रिका को भी अतीताम्बर में छिपा रहे हैं। देखते-ही-देखते उत्सव प्रारम्भ

हो गया। श्यामबाजार की श्यामा गोविन्द और विजया के सामने घुँघरू पहन कर थिरकने लगी।

श्यामा नाच रही थी। उसके हाव-भाव, कटाक्ष तथा मृदु मुस्कान पर सैकड़ों मर रहे थे, सैकड़ों कुलाङ्गार थाप के साथ उसके पैर रखते ही वाह-वाह के नारे से गोविन्दभवन को गुँजा रहे थे। श्यामा गजब की नर्तकी थी। उसका सुगठित शरीर, गुलाबी गाल और भौंरे के समान केश कितने ही धनकुबेरों के कुलाङ्गारों को डाँवाडोल कर रहे थे। ओह! श्यामा ने गजब ढा दिया। उसके कमर की लचक ने तो सबों को लौटा ही दिया।

अब तो वह नाच के साथ-साथ अश्लील भाव भी बताने लगी। नवयुवकों का समाज फड़क उठा। बड़े-बड़े खूसटों के मुख पर भी मृदु मुस्कान की रेखा झलक पड़ी। बड़े-बड़े पण्डित और पुजारी भी श्यामा की प्रशंसा किये बिना नहीं रहे। सभी के मुँह से श्यामा की ही ध्वनि निकल रही थी।

नाच समाप्त होते ही श्यामा का कण्ठस्वर निकल पड़ा। कोकिल की कूक के समान वह गोविन्दभवन में हूक उठी। दर्शक-मण्डली स्तब्ध थी—पूर्ण शान्त थी। सभी कठपुतली के समान हो रहे थे। सभी की एकाग्र दृष्टि श्यामा पर डटी थी। किसी को इतना साहस नहीं था कि चूँ तक कर दे।

श्यामा ठाठ के साथ गा रही थी। श्रोता उसकी मदभरी चितवन से घायल हो रहे थे। सैकड़ों कामी अपनी सुध-बुध खो चुके थे। सभी श्यामा के रूप-दर्शन में निमग्न थे कि

एकाएक भीड़ में से वायुमण्डल को चीरती हुई एक तीव्र आवाज आई। इस कर्कश स्वर ने सबों को चौंका दिया। दर्शकमण्डली स्तब्ध हो गई और मूक होकर उस आवाज की प्रतीक्षा करने लगी।

तत्काल ही एक आदमी ने उठकर गर्जते हुए पूछा—क्या है? दरवाजे की भीड़ ने उसी प्रकार मन्दिर को गुञ्जाते हुए उत्तर दिया। डोमड़ों का दल मन्दिर में घुस आया है। डोमड़ों का नाम सुनते ही पहली आवाज ने पुन कड़कते हुए कहा—मारो सालों को, मन्दिर अपवित्र हो गया। राम! राम! डोमड़े घुस आये। गोविन्दभवन को इन दुष्टों ने भ्रष्ट कर दिया।

देखते-ही-देखते भीड़ से धमाधम्म की आवाजें आने लगी। खड़कुआ डोमड़ा जो गोविन्दभवन के मुहल्ले में झाड़ू लगाया करता था; अपनी स्त्री और पुत्री को लेकर माँ के दर्शन के लिये आया था। फाटक के दर्बान ने उसे भीतर देख हल्ला किया। बस, अब क्या था। भीड़ के उद्दण्ड नवयुवकों ने तीनों को खूब पीटा। तीनों रोते-पीटते अपने बासा पर गये।

रकटुआ बुरी तरह पीट कर मन्दिर के बाहर निकाला गया। सभ्य समाज! तनिक विचार तो कर। क्या तेरे श्यामा से भी यह परिवार, जिसे तुमने अभी लातों से रौंदा है, अपवित्र है? हाय! क्या विजया तुम्हारी ही जननी है। एक डोमड़े को उसकी प्रतिमा देखने का अधिकार नही है? समाज! स्वार्थी समाज! अपनी नीचता से तू बाज नही आता।

हाय रे हिन्दू समाज ! तू पतन के अनन्त पर कितनी दूर पहुँच चुका है। क्या तू नही देखता ? तुझे ज्ञान नही ? नरक की कीट वेश्यायें तो सादर मन्दिर में लाई जाती हैं, परन्तु सजातीय के रङ्ग में रँगी हुई एक पवित्र आत्मा धक्का देकर बाहर निकाल दी जाती है। ओह ! पतन का कितना बड़ा अट्टहास है। अपवित्रता का कैसा भयङ्कर ताण्डव है।

समाज ! अत्याचारी समाज ! धिक्कार है तेरे धर्म को, थू है तेरी पवित्रता को। मातेश्वरी ! तू दीन दुखियों को भूल गई ? हाय ! आज तुम्हारी निर्बल आत्माओं पर पाशविक अत्याचार किया जा रहा है। तेरे दीन हीन बच्चे दुराचारियों के आखेट हो रहे हैं। परन्तु हाय ! तुम्हारे कानों पर जूँ भी नही रेंगती। मातेश्वरी ! इन अत्याचारियों का अन्त करने के लिये तुम्हें पुन: कराल करवाल धारण कर सिंहवाहिनी बनना पड़ेगा।

भीड़ के शान्त होते ही श्यामा फिर उठी। दुर्गा के भक्तों ! तनिक इधर ध्यान दो। तुमने मातेश्वरी की खूब नकल की। जगदम्बा रण में गाजती थी, तेरी श्यामा तुम हीजड़ों के दल में गा रही है। जगतजननी की भृकुटि के संकेत मात्र से ही दानवों का दल 'मूर्छित' हो उठता था। आज श्यामा की तिरछी नजरों से तेरे बच्चे-बच्चे घायल हो रहे हैं। शिवा के ताण्डव से अवनि और अम्बर एक हो उठता था, तुम्हारी श्यामा के ताण्डव से गोविन्दभवन गूँज उठा है। अब क्या

चाहिये। नारकीय समाज! अब और कुछ बाकी है। शक्ति-मूर्ति तो तुम्हारी सजीव खड़ी है, क्यों! यदि ऐसा नहीं है तो तुम्हारा यह कार्य्य पापपूर्ण है। तुम पापी और नराधम हो। समझ लो मरने पर भी निस्तार न होगा।

श्यामा का मुजरा समाप्त हुआ। अब चन्द्रप्रभा उठी। धीरे-धीरे रात्रि भर में एक नहीं अनेक वेश्याओं ने थिरक-थिरक कर समाज की चाँदी पर लातें जमाईं। सबेरा होते ही सभी मनमाने रुपये और पुरष्कार पाकर हँसती, मचलाती, इठलाती और सिसिआती हुई धनकुबेरों के कुलाङ्गारों को घायल कर अपने-अपने नरकालयों में जा पहुँची।

× × × ×

समाज! तूने रकटुआ को पीट कर विजया के दिन मन्दिर से निकाल दिया। वह उसी गली में नित्य झाड़ू लगाया करता था। आज बड़ी आशा करके मन्दिर में आया था। वह सोच रहा था कि आज मन्दिर से मुझे अवश्य ही प्रसाद मिलेगा। इसीलिए वह अपनी लड़की और स्त्री को भी साथ लेता आया था। समाज ने उसे खूब प्रसाद दिया। बेचारा प्रसाद खाते-खाते अधमुआ हो गया।

धर्मान्धों की मार से रकटुआ बीमार पड़ गया। उसके मर्मस्थान में चोट लग गई थी। साथ ही डंडों की हूल से उसकी छाती में स्थान-स्थान पर खून जम गया था। बेचारा गरीब था, असहाय था, विवश था, क्या करता? उचित

उपचार न होने के कारण छाती का जमा हुआ खून फोड़ा बन कर निकल पड़ा। हाय ! मार की पीड़ा से आज समाज की एक पवित्र आत्मा आँसू बहा रही है।

रकटुआ बेचैन था, उसकी प्रत्येक साँस में एक धधकती आह निकल रही थी। निर्दोष की आह क्या नहीं करती ? मारे पीड़ा के व्यस्त होकर वह मन ही मन कह रहा था; जगदम्बे ! मै तेरे दर्शनों के लिए गया था। मैंने तेरे पवित्र धाम में—उस गोविन्दभवन में—कोई अपकर्म नहीं किया। मै शुद्ध और पवित्र होकर गया था। मन्दिर में जाने के पूर्व हमने मातेश्वरी भागीरथी के पवित्र जल से अपने को शुद्ध कर लिया था। मेरे वस्त्र स्वच्छ थे। शरीर शुद्ध और मन पवित्र था। फिर ऐसा दण्ड मुझे क्यों मिला ? हमने कौन सा अपकर्म किया ? मेरे किस दुराचरण के कारण मन्दिर भ्रष्ट हो गया। हाय ! हम मनुष्य होते हुए कुत्ते और बिल्लियों से भी हीन हो गये !

इसी प्रकार सोचते-सोचते रकटुआ विक्षिप्त हो उठा। अब वह जोर-जोर से बोलने लगा। पापी समाज ! ठहर, तेरा गोविन्दभवन अभी भ्रष्ट नहीं हुआ है। देखना, कुछ ही दिनों के बाद वह सचमुच भ्रष्ट हो जायगा। मैं डोमड़ा हूँ तो क्या, मेरी अन्तरात्मा कह रही है। निश्चय ही गोविन्दभवन एक दिन नष्टभ्रष्ट हो जायगा। कुछ ही समय अवशेष है कि इस धर्ममन्दिर के नाम से लोग थूकेंगे। निश्चय ही इन धर्मगुरुओं की काली करतूतों से मन्दिर की दिशायें काँप उठेंगी।

रकटुआ के फोड़ों ने भयङ्कर रूप धारण किया। डाक्टरों ने बड़ी चेष्टा की कि डोमड़ा बचा लिया जाय; परन्तु सब बेकार हुआ। फोड़ों का संसर्ग फेफड़े से हो चुका था। हाय! बेचारा गरीब तड़प-तड़प कर रह गया। समाज! इसकी आहों को साधारण न समझ। यह प्रत्यक्ष वाड़व बनकर तुम्हारे अन्याय के सिन्धु को शोष लेंगी। दावाग्नि बनकर तुम्हारे ऐश्वर्य्य रूपी गहन वन को बात-की-बात में भस्म कर देंगी अथवा कलपना रवि के समान तेरे स्वार्थमय संसार को शेप कर देंगी। तू किस बात में फूला है। तेरे पशुबल के सुदृढ़ दुर्ग की एक-एक ईंट इन गरीबों की आहों से चूर-चूर हो जायगी।

बेचारा डोमड़ा अधिक दिन तक यह यन्त्रणा नही भोग सका। उसने शीघ्र ही इस स्वार्थी संसार से सम्बन्ध तोड़ दिया। रकटुआ अब यहाँ नही है। उसकी पवित्र आत्मा उस लोक में जा पहुँची है, जहाँ भेद-भाव नही है। जहां स्वार्थ और ईर्ष्या का नाम नही है। जहॉ छलकपट का वास नही, जहॉ ऊँच और नीच का विचार नही। रकटुआ, ओह! तू कहॉ पहॅुच गया? अरे वहॉ तो कही भी रोग और शोक नही, आधि और व्याधि नही। सबसे बड़ी बात तो यह है कि वहॉ उन नारकीय आत्माओं की पहॅुच नही है, जो इस नश्वर संसार में अत्याचार मचा रही हैं। अत्याचारी आत्माओं के लिए नरक का द्वार खुला है। रकटुआ! तू धर्मात्मा था, नि सन्देह पवित्रात्मा था। इसी कारण जगदीश ने तुझे अपने निकट बुला लिया।

रकटुआ को मरे दो वर्ष हो गये ! उसकी स्त्री गंगिया ने बड़ी कठिनता से यह दो वर्ष का रँड़ापा काटा। जनकिदा दस वर्ष की हो चुकी थी। पास में पैसा नही कि उसकी शादी कर देती। यहाँ तो भोजनों के भी लाले पड़ रहे थे। झाड़ू लगाना ही उसका काम था, जिससे इतनी आय नही होती थी कि माँ-बेटी उस अर्थपिशाच नगर में सुखसे रोटी भी खा लें।

दो ही तीन वर्ष के ब्रह्मचर्य ने गंगिया को चमका दिया। सचमुच वह प्रौढ़ा चमक उठी। उसके मुख पर ब्रह्मचर्य का तेज दमकने लगा। शरीर सुगठित हो गया। गोरी तो वह थी ही, एक बार फिर खिल उठी। अब भी वह गोविन्दभवन की गलियों में झाड़ू लगाने जाया करती थी।

मुर्झाया हुआ फूल खिल उठा है। गंगिया को देखते ही अब सैकड़ों मनचले झुकने लगे। बड़े-बड़े टीकाधारी अपनी-अपनी खिड़कियों से झाँक कर गंगिया के नितम्ब और पीन पयोधरों पर मरने लगे। नीच वर्णों से घृणा करनेवाले सहस्रों कामी कुत्ते बोली बोलते हुए बेचारी गंगिया के पीछे-पीछे फिरने लगे।

गंगिया पर भारी विपत्ति आई। इधर तो पति का दु ख असह्य हो रहा था, अब यह दूसरा पहाड़ आ गिरा। उस साध्वी के लिये यह अपार दु ख था। वह भावी आशंका से सिहर उठी। अन्त में लुङ्गाड़ों के भय से उसे झाड़ू लगाने का काम भी छोड़ना पड़ा। हाय ! वह क्या करती—इस प्रकार अपना सतीत्व नष्ट कर देती ? कदापि नही !

गंगिया ने म्युनिसिपल बोर्ड का काम छोड़ दिया। दूसरे ही दिन उसे म्युनिसिपल बोर्ड का घर खाली कर देने की आज्ञा मिली। हाय! विचारी क्या करती? उसके आगे और पीछे कोई नही था—सर्वत्र अन्धकार ही अन्धकार था।

रकटुआ बनारस का रहने वाला डोमड़ा था। धन कमाने की इच्छा से कलकत्ता गया था। हाय! उस अज्ञात नगर में उसका पञ्चभौतिक शरीर नष्ट हो गया। उसकी स्त्री और कन्या पर विपत्ति के बादल घहरा उठे। गंगिया के पास केवल चाँदी के कड़े थे, जिन्हें बेचकर वह अपने मायके जाने का विचार करने लगी। उसे आशा थी कि वहाँ पहुँच जाने पर बाबू-भइयो का चौपाल साफ कर लेने पर हमारा निर्वाह हो जायगा और कोई योग्य स्वजातीय बालक देखकर जनकिया के ऋण से उद्धार होने में अधिक अड़चन नही पड़ेगी।

जनकिया का ननिहाल चौबेपुर के पास एक ग्राम में था। गंगिया अपनी पुत्री के साथ कलकत्ता से चल पड़ी। दूसरे ही दिन बनारस होती हुई कादीपुर स्टेशन पर उतरी। घर मालूम था ही। सामान उठाकर लड़की के साथ भाई के यहाँ जा पहुँची। गंगिया की भावज सूप बुन रही थी। अपनी ननद को आती देख दौड़ पड़ी और एक दूसरे को लिपट कर रोने लगी। कुछ देर के बाद दोनों का रोना-धोना बन्द हुआ। इसी बीच में भिखुआ भी आ पहुँचा। गंगिया उसका भी पैर पकड़ कर घंटों रोती रही। भिखुआ का हृदय उमड़ पड़ा। उसने रोते हुए

कहा—बहन दुःख न कर। हमने तो एक नहीं दस-दस बार तुम्हारे यहाँ चिठ्ठी लिख भेजा था कि चली आओ, चली आओ। यहाँ साग-सत्तू जो भगवान देंगे, उसीमें सब मिल कर निर्वाह कर लेंगे। आज पाँच वर्ष तुम्हें कलकत्ता गये हुए हुआ। खैर! कोई चिन्ता नहीं। अब आगई हो, ठीक है। देखो यहाँ आ जाने से जनकिया का भी कहीं प्रबन्ध ठीक कर देते हैं, लड़की सयानी हो रही है।

गंगिया बड़े मजे में रहने लगी। उसे किसी प्रकार का कष्ट नहीं था। उसने समझ लिया था कि मेरी शेष आयु अब शान्तिपूर्वक बीतेगी; परन्तु यह उसकी भूल थी। यहाँ का भी समाज नारकीय लुङ्गाड़ों से खाली नहीं था। दो-चार मनचले कुत्ते इस गठन पर मरने ही लगे।

गाँव के पं० छविनाथ शुक्ल ६५ वर्ष के हो चुके थे। सर हिल उठा था। पाँव काँपने लगते थे, परन्तु तौ भी वे गंगिया को देख सन्ना उठे। वे खुल्लमखुल्ला कैसे बोल सकते थे? परन्तु गंगिया को बिना गोद में बैठाये भी कैसे रह सकते थे। उन्होंने भिखुआ के द्वारा गंगिया को गोंड़ा साफ कराने के लिये एक रुपया माहवार पर नियुक्त करा लिया। गंगिया साँझ-सवेरे झाड़ू लेकर छविनाथ के गोंड़ा में जाने लगी।

छविनाथ के निकट ही नथुनीसिंह रहा करता था। गंगिया को छविनाथ के गोंड़ा में जाते देख वह जल उठा। वह स्वयं गंगिया को हथियाना चाहता था। उसने दो रुपये महीने पर

अपना गोंड़ा साफ करने तथा पशुओं के गोबर की चिपरी थाप देने के लिये गंगिया को ठीक किया। अब गंगिया का अधिकांश समय नथुनीसिंह के गोंड़ा में बीतने लगा। नथुनी जी-जान से उसे मिलाने के फेर में पड़ गया; परन्तु गंगिया टस से मस नही हुई। नथुनी ने रुपये और गहनों का प्रलोभन दिया, परन्तु उस सती के आगे यह सब तुच्छ था—कामी कुत्ते टर्राते ही रहे; परन्तु साध्वी गंगिया विचलित नही हुई।

पर हाय! गंगिया पर एकाएक विपत्ति आ पड़ी। प्लेग सर्वत्र थिरक उठा। भिखुआ उसके गाल में प्रविष्ट हो गया। चारों ओर पटापट लोग मरने लगे। देखते-ही-देखते गाँव जन-शून्य सा बोध होने लगा। हजारों आदमी महामारी के आखेट हो गये, कोई मुर्दों को ढोने वाला नही रह गया। गंगिया की भावज भी इस लोक से चल बसी। हाय! दो ही चार दिन मे इस भयङ्कर महामारी ने गंगिया को भी नही छोड़ा। वह भी अकेली जनकिया को छोड़ इस नारकीय लोक से चल निकली और उसी लोक में—जहाँ रकटुआ गया था—जा पहुँची।

केवल जनकिया रह गई। मामा का घर द्वार सब जमीं-दार ने नीलाम करवा लिया। अब वह विचारी कहाँ रहे? क्या करे, क्या खाय? चारो ओर उसे विपत्ति-ही-विपत्ति दिखाई दी। उसके बाप के भी वंश में कोई नही था, कहाँ जाती विवश थी।

बालिका भीख माँगने लगी, परन्तु उस देहात में जहाँ सर्वत्र प्लेग अपना अड्डा स्थापित किये हुए था, सर्वत्र हाहाकार

मच रहा था, कौन उसे भीख देता ? चारों ओर से दुतकारी जाने लगी। एक दिन बीता, दो दिन बीते, आज तीसरे दिन की भी बारी आ गई। उसके जाति बिरादरी वालों ने भी खबर नहीं ली। बेचारी बालिका भूख के मारे घबड़ा उठी। किसी प्रकार दो कोस चलकर साँझ को बाबा चेतनदास की कुटिया पर पहुँची। चेतनदास रँगीले साधु थे। उन्होंने उसे गुड़ और सत्तू खाने के लिये दिया और कहा कि ठहर, रात में भोग लगने पर तुझे प्रसाद मिलेगा। जनकिया खाने के लोभ से रुक गई।

बाबा चेतनदास की कुटिया गाँव के बाहर में थी। आज उन्होंने हलुआ और पूड़ी ठाकुरजी के भोग के लिये बनाया। एक प्रहर रात्रि बीतने पर जब सर्वत्र सन्नाटा हो गया, तब उन्होंने जनकिया को प्रसाद पाने के लिये उठाया। कुटिया का द्वार बन्द कर वे उसे चौके में लिये चले गये। बाबाजी ने उसके आगे हलुआ और पूड़ी रख दी। वह बेचारी धीरे-धीरे खाने लगी।

हलुआ की गन्ध ने जनकिया को मस्त कर दिया। उसके जीवन में आज उसे यह पहली ही बार खाने को मिला था। बड़ी खुशी-खुशी खा रही थी। इतने ही में बाबाजी ने अपने हाथ से थोड़ा सा हलवा जनकिया के मुँह में डाल दिया। जनकिया खा गई। अब क्या था; बाबाजी पूड़ियाँ भी तोड़-तोड़ कर खिलाने लगे। जनकिया खाती चली गई। अब बाबाजी उसे अपनी गोद में बिठाकर खिलाने लगे।

भोजन के उपरान्त सोने की बारी आई। जनकिया निरी बालिका नही थी—ग्यारह पार कर बारह में पैर रख चुकी थी। गंगिया के समान ही उसका रूप था। बाबाजी ने एक कमरे में चौकी पर उसके सोने का प्रबन्ध कर दिया।

बाबाजी अपने आसन पर आये; परन्तु हाय! जनकिया को नही भूल सके। उनकी काम-शक्ति उबल पड़ी। ठीक आधी रात को जब जनकिया घोर निद्रा में पड़ी खर्राटे ले रही थी, चेतनदास धीरे-धीरे जाकर उसीके बगल में लेट गये। बाबाजी का हाथ पडते ही बालिका चौंक पड़ी। वह चीखना ही चाहती थी कि बाबाजी ने सँड़सा दिखाते हुए कहा—चुप रहो, नहीं तो यह सँड़सा तेरे पेट में भोंक दूँगा।

सँड़सा देखते ही बालिका सहम गई। मारे डर के वह कुछ न बोल सकी। उसने धीरे से अपने को समर्पण कर दिया। अब क्या था, बाबाजी की बाँछें खिल गईं। उन्होंने जनकिया को हृदय से लगा लिया। बालिका विवश थी। हाय! उस नर-पिशाच ने इस अधकचरी कली को बात-की-बात में कुचल डाला।

समाज! कुछ देखता है? ये सैकड़ों जटाधारी तेरा ही रक्त चूस-चूस कर तुझ पर ही आक्रमण कर रहे है। तेरी ही बहू-बेटियो को भ्रष्ट कर रहे हैं, फिर भी तू मौन है।

हाय! जनकिया को पेट की ज्वाला ने आज भ्रष्ट करा दिया। भोर होते ही बेचारी भागी। भागते-भागते वह काशी पहुँच गई; परन्तु यहाँ भी वह विपत्तियों से नही बच सकी। दिन भर माँगना

और रात में लक्सा के धर्मशाले में अथवा दशाश्वमेध घाट पर जहाँ कोढ़ियों का अड्डा है, सो जाना यही उसका काम था।

आज जनकिया साँझ से ही पैसा माँगने के लिये दालमण्डी में चक्कर लगा रही थी। माँगते-माँगते वह बुट्टन बाई के कोठे के नीचे पहुँची। बुट्टन खिड़की पर बैठी अपने यारों को झाँक रही थी कि एकाएक उसकी दृष्टि जनकिया पर जा पड़ी। इतनी सुन्दर लड़की को भीख माँगते देख उसके मुँह में पानी भर आया। उसने नौकरानी को भेज उसे बुलवा लिया।

जनकिया बुट्टन के यहाँ रह गई। अब उसके दिन बड़े सुख से कटने लगे। उसे खाने को स्वादिष्ट भोजन मिलता तथा पहिरने को स्वच्छ वस्त्र। बुट्टन ने उसे नाच-गाना सिखाना आरम्भ किया। तीक्ष्ण बुद्धि के कारण जनकिया थोड़े ही दिनों में प्रवीण हो गई। उसका स्वर अच्छा था, उसने एक ही दो वर्षों में दालमण्डी की नामी-नामी रण्डियों को मात कर दिया।

जनकिया बनारस में विख्यात हो गई। अब वह चौदह वर्ष की है। उसके मुखड़े को देख शुक्ल चतुर्दशी का इन्दु भी लज्जित हो उठता है। वह पूर्ण विकसित हो उठी। हजारों मनचले धनपतियों की आत्माएँ नित्य उसके मृदु मुस्कान पर मर मिटने लगीं।

जनकिया अतीत की बातें जानती थी। उसने पिता को कष्ट भोग-भोग कर मरते हुए देखा था। वह समाज की नीचता को समझती थी। उस दिन जब वह पवित्र थी, समाज उसे

अछूत समझता था। उसका स्पर्श करने मे घृणा करता था। परन्तु आज जब वह अपवित्रता की अङ्क में पड़ी हुई आचार-भ्रष्ट हो रही है। तब वही समाज उसका आदर करता है तथा उसे स्पर्श करने में अपने को धन्य समझता है। वह समाज द्वारा किये गये अत्याचारो को नही भूल सकी। उसके हृदय में प्रतिहिंसा की ज्वाला धधक रही थी। वह चुन-चुन कर नव-युवको को अपने रूप-जाल में फँसा-फँसा कर संहार करने लगी। वर्षों बीत गये, जनकिया की आत्मा इस परिस्थिति में पड़ कर अत्यन्त निर्दय तथा कठोर हो गई—विपदग्रस्तो को तड़पते देख अब उसे प्रसन्नता होने लगी। वास्तव में नारकीय समाज के प्रति उसे घृणा हो गई।

× × × ×

आज रामनवमी का विराट उत्सव था, गोविन्दभवन वास्तव में आज चमक रहा था। आज के पूर्व वहाँ कभी भी इतनी सजावट नही हुई थी। गोविन्दभवन की गलियाँ राम-नाम के पवित्र उच्चारण से गूँज रही थी।

गोविन्दभवन मे काशी की प्रसिद्ध वेश्या जानकीबाई आज आ रही है। सारे कलकत्ते में धूम मच गई है। जिधर देखो उधर ही से जनसमुद्र उमड़ा चला आ रहा है। देखते-ही-देखते धर्ममन्दिर नाच के प्रेमियों से ठसाठस भर गया। हाय! मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान राम के नाम पर यह छीछालेदर।

जानकीबाई ने मन्दिर मे प्रवेश किया। उसके निखरे हुए

रूप ने सबों पर जादू चला दिया। हजारों मनचले कलकतिये लोटपोट होने लगे। धनकुबेरों के कुलाङ्गार पुत्रों के हृदय पर साँप लोटने लगा। तब तक उधर झूमछाम करती हुई जानकी भी दुराचारियों के जान की भूखी हो उठी। जानकी बाई ने अपने नाच और गान से महफिल को मोहित कर लिया।

अब क्या था। सभी हाथोहाथ जानकी का स्वागत करने लगे। पुजारी ने स्वयं उठकर भगवान के गले से एक गजरा निकाल कर जानकी के गले में डाल दिया और साथ ही हाथ पकड़ कर उसे अपने से भी ऊँचे स्थान पर बिठाया—शहर के बड़े-बड़े बाबू-भइया हाथ बाँधे चारो ओर इस अभिप्राय से खड़े हो गये कि जानकी कुछ कार्य्य के लिये मुझे आज्ञा दे। नीच समाज ! डूब जा चुल्लू भर पानी में। लज्जा नही आती। आज यदि कोई धर्मोपदेशक आता तो इस प्रकार नहीं खड़े रहते। वेश्याओं के गुलाम ! अब भी तो तनिक चेत !

इसी बीच में पुजारी ने जानकी का परिचय पूछा—जानकी शुष्क हँसी में हँसते हुए बोल उठी—महाराज ! क्या आप मुझे भूल गये। तीन ही वर्ष में आपका ध्यान जाता रहा। मै गंगिया की बेटी जनकिया हूँ।

जानकीबाई की बातों ने सभी को सब कर दिया। लोग विस्मित हो गये; परन्तु जानकी के अधर पर एक बार मृदु-मुस्कान थिरक उठी। पापी समाज ! देख अपना नङ्गा नाच !

४
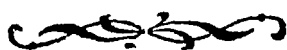
पूर्वाभास

पतित समाज की सारी शेखियाँ धूल में मिल गईं। आज उसने पूर्वजों की कीर्ति अपने हाथों से कलंकित कर दी। निःसन्देह इस नारकीय समाज ने अपने को नष्ट कर दिया—इसके अविचार पूर्ण कार्य्यों से कोना-कोना दूषित हो गया।

इसने उन शूद्रों पर घोर अमानुषिक अत्याचार किया जिनके बल से समाज टिका था। इसने राम और कृष्ण के उन भक्तों को रौंदा जिनके द्वारा उन्होंने ने शत्रुओं पर विजय पायी थी, जिनकी सेवा से जङ्गलों में मङ्गल मचाया था तथा संसार के सामने अपने को मर्य्यादा पुरुषोत्तम सिद्ध किया था।

शासन प्रेम से होता है। अत्याचार और पशुबल की यन्त्रणा से कोई वशीभूत नही रह सकता। ठीक यही हाल उन शूद्रों का भी हुआ—अछूत कह कर घृणा करने वाले पोंगापंथियों को अपने कर्मों का फल मिल गया। अब वे उन शूद्रों को इस प्रकार नहीं रौंद सकते, जैसा कि तीन शताब्दियों से उन्होंने किया है।

शूद्र अपने को भूले हुए थे, अछूतों की आत्माएँ अन्धकार मे पड़ी थी उन्हें यह नहीं ज्ञात था कि हम भी मनुष्य है—आज उन लोगो ने अपने स्वरूप को पहचाना है। आज अपनी आत्मा के रहस्य को जाना है। देखो! अधिकांश शूद्र आज उन दुर्गुणों को त्याग रहे है—उन नीच कर्मों को समाज से हटा रहे हैं, उन अवगुणो से अपने को पृथक् कर रहे हैं जिनके द्वारा उनकी अधोगति हुई है और वे पैरों के नीचे रौंदे गये हैं। मांस और मदिरा, जुआ और चोरी, असत्य भाषण और अपवित्रता तथा वेश्यागमन और व्यभिचार उनके समाज से दूर हो रहा है। परन्तु शोक! ऊँच बनने वाली द्विजाति-जाति इसे अपना रही है। सम्पूर्ण अवगुणों को जिन्हें शूद्र छोड़ रहे हैं—प्रसन्नता पूर्वक उच्च वर्ण वाले अपना सत्कार्य्य समझ धारण कर रहे हैं।

ब्रह्मर्षियों की सहस्रों सन्ताने होटलों में मांस और मदिरा उड़ाने लगी। पूछने पर जवाब मिल रहा है कि अप-टू-डेट सभ्यता है। आत्मज्ञानियों की लाखों आत्माएँ रंडियों के यहाँ

जा-जा कर शराब-कबाब और कलिया-उड़ाने लगी। यह क्या? नई रौशनी का चमत्कार है। धत्तेरे नई रोशनी की! नई रौशनी थोड़े ही कहती है कि तुम शराबी और कबाबी हो जाओ, रंडीबाज और जुआरी बन जाओ, यह सब तो अपनी नीचता है।

उच्च वर्ण के हिन्दुओं में ही विधवा व्यभिचार फैला है, ये ही शिखा-सूत्र धारण करने वाले, उन अबलाओं को भ्रष्ट करते है और अन्त में भ्रूणहत्या समान घोर पापों के करने में भी नहीं चूकते। अजी इतना ही नही, शिशु-हत्या करते हुए भी तनिक नही हिचकते। देखो! सभ्य समाज की यह काली करतूत! इतनी भ्रष्टता होने पर भी उच्च अधिकार के लिए मर रहा है।

शूद्रों को क्या? उनके यहाँ विधवा-विवाह धर्मसंगत है। वे द्विजातियों के समान विधवाओ से व्यभिचार कर गर्भ रहने पर उन्हें तीर्थों पर नही छोड़ आते। वे बाल-विवाह, बहुविवाह और वृद्ध-विवाह के द्वारा समाज को पतन की अग्नि में नही झोंकते। उनकी विधवायें अधिकांश वेश्यायें नही बनतीं और न इस प्रकार विधर्मी सन्तान ही उत्पन्न करती हैं।

उच्च वर्णों के समान लुक-छिप कर उनका व्यभिचार नहीं होता, वे डंके की चोट पर काम करते हैं। जैसा वे भीतर से रहते हैं ठीक वैसा ही अपने को समाज के सामने रखते हैं। उनके पास छल और कपट नही होता। वास्तव में गुप्त पाप

को वे भयंकर अधर्म समझते हैं। निःसन्देह शूद्र उच्च समाज के समान विष से भरे हुये स्वर्ण घट के तुल्य नही हैं। मानता हूँ वे मिट्टी के घड़े है, परन्तु उनके भीतर अमिय विन्दु है। वे बाहर और भीतर से पवित्र है।

इतना होने पर भी नारकीय समाज उन्हें दुतकारता है, सामने से हटाता है, अपने कुओं पर नही आने देता! वाह, वाह! खूब कलियुग आया है—पापी तो माल खावे, सोने की चौकी पर बैठाया जावे, अक्षत और चन्दन से उसकी पूजा हो, परन्तु पुण्यात्मा लात खाय, घूर पर वैठाया जाय। समाज का आदर्श देखो!

समाज के नर-नारियों, सोचो! मैं सत्य कह रहा हूँ अथवा असत्य! अपने-अपने हृदय से पूछो, इसका यथार्थ रहस्य आत्मा बता देगी। निःसन्देह वह निष्पक्ष न्यायकर्तृ है! अरे इतना तो सोच लो कि कर्म ही सब कुछ है, कर्म से ही ऊँचता और नीचता है। तेरे नारद कौन थे? राम के गुरु वशिष्ठ, पारा-शर और व्यास कौन थे? भृङ्गी और भृङ्गी कौन थे? अब भी तनिक लज्जा आ जानी चाहिये!
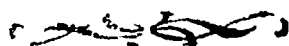
कुलांगारों के कुकृत्य

मारो ! मारो ! दुष्ट कुयें पर चढ़ आया—कहते हुए पण्डित छटंकी लाल बुधुआ पर टूट पड़े । इधर उनके चिल्लाते ही बीसों आदमी आ जुटे और उस निरपराध डोमड़े को अधकचरा कर डाले, हाय ! लात घूसों की मार से विचारा अधमरा हो गया ।

बगल की ही गली में बुधुआ का बाप सुखुआ झाड़ू लगा रहा था । कुएँ पर हो-हल्ला सुन कर वह भी हाथ में झाड़ू लिए आ पहुँचा । अपने पुत्र पर अत्याचार देख वह समझ गया और हाथ जोड़-जोड़ कर सभी लोगों से कहने लगा—"बाबू

जी, मालिक लोगों, रहम कीजिये। मेरे गरीब लड़के की जान बक्स दीजिये। अब कभी कुएँ पर नही आयेगा।" परन्तु कौन धर्म की कहानी सुनता था। लोग इसकी ओर भी झुक पड़े।

सुखुआ एक हट्टा कट्टा आदमी था। डोमड़ा था तो क्या? था सदाचारी। बाबू-भइयों की तरह दुराचारी और लम्पट नही था। वेश्यागामी और कुकर्मी नही था। उसने दुष्टों को अपनी ओर आते देख हाथ में झाड़ू और नाली साफ करने वाला डंडा उठा लिया और आगे बढ़ा।

बात-की-बात में ५-७ आदमी गाली देते हुए उसके ऊपर टूट पड़े। उसने भी डंडा सीधा किया और एक ही झपाटे में ३-४ को सुला दिया। अब क्या था? सभी एक बार ही उस पर उठ दौड़े, परन्तु वाह रे डोमड़ा, बीसों को उसने उठा-उठा कर पटका। कितने तो औंधे जा गिरे और कितने ही गाली देते हुए रफूचक्कर हो गये। डोमड़े की इतनी बड़ी हिम्मत देख पं० छटंकीलाल कुएँ पर से ही गरज उठे। अरे मारो मारो डोमड़ा सत्यानाश कर रहा है। पुलीस बुलाओ, पुलीस बुलाओ, परन्तु स्वयं तो मारे डर के थरथरा रहे हैं।

सुखुआ ने बीसों का कचूमर निकाल दिया। सब जान छुड़ा-छुड़ा कर भागे। अब सुखुआ आगे बढ़ा और कुएँ पर पहुँच कर पंडित जी की झोंटइयां पकड़ तीन झापड़ लगा कर बोला, कहिये पण्डित जी महाराज अब क्या किया जाय?

पण्डित जी तो पत्ते की तरह कॉप रहे थे। वे डरते-डरते

बोले, भाई सुक्खू ! माफ करो । हम तो तुम्हारे पुरोहित हैं । हमारा कोई दोष नही । ये गाँव वाले साले बड़े दुष्ट हैं । तुम्हारे लड़के को इन्ही सबों ने पीटा है । मैं तो खुद सबसे उसे छोड देने के लिए अनुरोध कर रहा था ।

परन्तु सुखुआ पण्डित जी की बातों में कब आ सकता था । उसने इनकी दुष्टता अपनी आँखों से देखी थी । असल बाते सुन कर उसका शरीर जल उठा । उसकी आँखे लाल हो गई । मारे क्रोध के उसने पण्डित जी को उसी कुएँ पर पटक कर खूब पीटा और उनकी छाती पर चढ़ कर गर्जते हुए बोला, अधर्मी बोल, धर्म है या चला गया ?

पण्डितजी नीचे पड़े-पड़े हाथ जोड़ते हुए बोले—भाई सुक्खू माफ करो, अब कभी ऐसा न करूँगा । मै थूक चाटता हूँ, कान पकड़ता हूँ, ठाकुर जी की कसम खाता हूँ, मुझे छोड़ दो । तुम्हें पंडिताइन की कसम, गौ की कसम, गंगा की कसम, भाई छोड़ दो, हम तुम्हारे ब्राह्मण हैं ।

पण्डित छटंकी लाल के बहुत गिड़गिड़ाने पर सुखुआ उनकी छाती पर से उतरा और सीधे अपने बच्चे के पास पहुँचा, जो इन दुराचारियों की मार से कुएँ की नाली के पास पड़ा-पड़ा कहँर रहा था । सुखुआ की आँखे छलछला आईं—उसने हृदय को पत्थर कर इस दु:ख को सह लिया और शीघ्र ही अपने पुत्र को कन्धे पर उठा कर घर की ओर ले चला । पं० छटंकी लाल भी अवसर पा पोथी लोटा उठा कर चलते बने ।

यह बात बिजली के समान गाँव में फैल गई, सुखुआ के हाथ से झाड़ू पाये हुए बाबू-भइया अपना अपमान कब सह सकते थे। उन लोगो ने भाग कर गाँव वालों को नमक मिर्च मिला कर यह खबर सुनायी। इतनी ही देर में पण्डित छटंकी लाल भी आ धमके और जजमानो से रो-रो कर कहने लगे—बबुआ लोगों, अब धर्म नही रह सकता। डोमड़े की यह मजाल! आप लोगों के रहते हुए यह अनर्थ! हाय! कलयुग आ गया! सत्यानाश!

पण्डितजी की बातों ने हलचल पैदा कर दी। सभी गाँव वाले सुखुआ को दण्ड देने के लिए लाठी ले-ले कर निकल पड़े। बिचारा अभी अपने घर पर भी नहीं पहुँच सका था कि राह मे ही सैकड़ो आदमियो द्वारा रोक लिया गया। बिचारा गरीब अकेला सैकड़ो उद्दण्ड धर्मान्ध नरपिचाशो के चक्र में पड़ गया।

बात-की-बात में उस पर लाठियाँ टूटने लगी। सुखुआ लाचार था, उसका लड़का पहले से ही बेहोश था। अपने लड़के को बचाने के लिए वह उसी पर लेट गया। गाँव वालो ने उसे खूब पीटा। यहाँ तक कि वह बिचारा अधमरा हो गया। उसे दस बीस आदमी कुछ नही कर सकते थे। परन्तु वह इस समय इन अत्याचरियो से अपने पुत्र की रक्षा में लगा था। उसे भय था कि इधर हम लोगो से लड़ने जायँ और उधर मेरे बेहोश बालक पर कोई लाठी न चला दे।

दोनों बाप बेटे जमीन पर सो गये। बुधुआ का क्या अपराध था। समाज! नारकीय समाज! बोल! तेरे भीतर नित्य ऐसे सैकड़ो काण्ड होते ही रहते हैं। क्या एक डोमड़े के कुएँ पर चढ़ने से तेरा कुँआ भ्रष्ट हो गया? उसके जल में डोमड़ा घुस गया? बोलता क्यों नही, यदि भ्रष्ट हो गया तो केवल डोमड़े से ही। ये विधमी यवन क्या डोमड़े से श्रेष्ठ हैं? गोमांस भक्षक विधर्मी तो तेरे कुओं पर बे रोक टोक आते जाते है, परन्तु एक गो भक्त हिन्दू धर्म के अनुचर से तेरा कुआँ अपवित्र हो गया। समाज! लज्जा कर, तनिक आँखें खोल।

थोड़ी ही देर में डोमड़ों को यह खबर लगी। वे लोग भी छप्पर के बाँसों को खींच बुधुआ और सुखुआ को बचाने के लिए निकल पड़े, परन्तु यहाँ क्या? अत्याचारियो का दल मार पीट कर भाग चुका था। दोनो बाप बेटे पृथ्वी पर पड़े-पड़े कष्ट से साँसें ले रहे थे। डोमड़ों ने चारपाई पर उठा कर दोनों को घर पहुँचाया। सुखुआ के मर्मस्थान में गहरी चोट लगी थी। वह बेचारा तड़प-तड़प कर साँझ होते-होते इस अत्याचारी लोक से चल बसा। बुधुआ धीरे-धीरे एक महीने के पश्चात् चलने फिरने लायक हुआ। डोमड़ो ने इस घटना की सूचना हाकिम को दी, परन्तु गाँव के एक होने के कारण कुछ न कर सके।

अब बुधुआ की छोटी बहन और माँ ही उसके परिवार में रह गईं। बुधुआ अभी दस वर्ष का था और उसकी बहन

केवल ७ वर्ष की थी। बेचारा अनाथ था, दीन था और दुखी था। परन्तु तो भी नरपिशाचों ने उसे तंग करना आरम्भ कर दिया। कालनेमि समाज की एक-एक आत्मा उससे डाह करने लगी। बेचारा विवश था, क्या करता? उसके पास न धन था और न वल। नारकीय समाज ने उसका मूलोच्छेद कर देना चाहा। कुछ ही दिनों के अन्तर्गत दुराचारियों ने उसे कुचक्र मे फँसा दिया। बेचारा रकम और चोरी के असत्य अभियोग में ५-७ युवक डोमड़ों के साथ फँसा लिया गया। सारे गॉव वाले एक थे ही। सभों को हाकिम ने कठोर दण्ड दिया। बुधुआ भी १० वर्ष के लिए जेल भेज दिया गया।

बुधुआ अभी बालक था। सरकार ने उसके प्रति बड़ी दया दिखलायी। वह शिक्षा प्राप्त करने के लिए जेल के स्कूल में भेज दिया गया। बुधुआ की बुद्धि तीव्र थी, वह जी-जान से पढ़ने लगा। कुछ ही दिनों में अपनी तीक्ष्ण बुद्धि तथा विलक्षण स्मरण शक्ति के कारण मास्टरों का प्रिय हो गया। छ. वर्ष में ही उसने इन्ट्रेंस की शिक्षा प्राप्त कर लिया।

छः वर्ष का लम्बा समय निकल गया। किसी प्रकार उसकी माता ने अपना और अपनी पुत्री का निर्वाह किया। अब रधिया तेरह-चौदह वर्ष की हो गई। एक नही सैकड़ों ब.बू- भइयों की दृष्टि उस पर पड़ने लगी। वास्तव में रधिया गजब की सुन्दर थी। अभी तो वह निखर ही रही थी कि सैकड़ो लोट पोट होने लगे, कलेजा थाम कर, आहें मार कर, गिर

पड़ने लगे तथा कामी कुत्ते के समान उसके पीछे-पीछे घूमने लगे।

इसी बीच में गाँव का जमीदार शनिश्चर सिंह एक दिन रधिया को अस्तबल में झाड़ू लगाते देख पानी-पानी हो गया। यह नीच वास्तव में शनिश्चर के ही समान क्रूर था। वह काम का कीड़ा उसे देख कब चुप रह सकता था। उस नर-पिशाच की कामाग्नि भड़क उठी। उसने आराम कुर्सी पर बैठे हुए, अपने बँगले पर से ही खाँसना आरम्भ किया। उसका अभिप्राय था कि मेरे खाँसने पर हमारी ओर यह अवश्य ताकेगी, परन्तु ऐसा नहीं हुआ। रधिया झाड़ू लगा कर सीधी गली की ओर चली गई।

शनिश्चर की अन्तरात्मा अशान्त हो उठी, काम की प्रबल अग्नि ने उसे झुलसाना आरम्भ किया। उस क्षुद्र में इतनी सहनशीलता कहाँ थी कि उमड़े हुए वेग पर विजय प्राप्त करे। उसकी अपवित्र आँखों मे रधिया थी, उसके हृदय मन्दिर में रधिया थी, उसके मुख में रधिया का नाम था, दुराचारी रधिया की सुन्दरता पर मर रहा था।

दोपहर तक असह्य हो गया। रधिया के सोच में आज वह बूढ़ा जमींदार भोजन भी नहीं कर सका। चौके पर गया परंतु आहार विष के समान जान पड़ा। बैठक में आते ही उसने एक सिपाही को कुलगुरु को बुलाने की आज्ञा दी।

पण्डित छटंकी लाल उसके कुलगुरु थे। उस प्रान्त मे

जहाँ विद्या का प्रचार नही था इनकी बड़ी प्रतिष्ठा थी। ये अपने को तांत्रिक कह कर प्रसिद्ध किये थे। मारण, मोहन, उच्चाटन और वशीकरण का काम इनके यहाँ जजमानों के होते ही रहते थे। गाँव वाले इनसे बहुत डरा करते थे।

जमींदार के आदमी को अपने दरवाजे पर देख बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने समझ लिया कि आज अवश्य ही कुछ रकम हाथ लगेगी। बड़ी प्रसन्नता के साथ तुरत ही पोथी, पत्रा और रमल लेकर चल पड़े। क्रूर शनिश्चर ने छटंकी लाल का बड़ा स्वागत किया।

थोड़ी देर के बाद पण्डित जी ने कहा! जजमान! आज दोपहर में बुलाने का क्या कारण है? हमारे योग्य जो सेवा हो बताओ। हम तुम्हारे कुलगुरु हैं। हमारे पूर्वजों ने तुम्हारे पूर्वजों को सदैव धर्म की शिक्षाएँ दी हैं। मैं भी पूर्वजों के अनुकरण में किसी बात की त्रुटि नही रखता हूँ।

पण्डित जी को अनुकूल देख शनिश्चर सिंह ने धीरे से कहा,—पंडित जी आप तो जान ही गये होंगे? हमने आज तक आपकी सेवा की है। परन्तु आज प्रसाद के लिए मन में इच्छा उत्पन्न हुई है। कोई ऐसा यंत्र दीजिये, जिससे हमारा मनोरथ सिद्ध हो, हम जिसे दिखावें, वह वशीभूत हो जाय। मुझे इतना ही चाहिये। हम इस कार्य के लिए आपके आजन्म ऋणी रहेंगे।

पण्डित जी बड़े चलतापुर्जा थे, वशीकरण का नाम सुनते

ही ताड़ गये कि अवश्य कही जमीदार की आँख लग गई है ? ठहरो ! निश्चय ही गहरी रकम सिद्ध होगी । परन्तु साथ-ही-साथ यह भी जानते थे कि यह भारी कंजूस है, ऐसे एक पैसा भी नहीं दे सकता। टेढ़ी अँगुली से ही घी निकलता है। अभी-अभी पेंच पर लाकर पटकता हूँ, बच्चू जायँगे किधर।

यही सोच विचार कर छटंकी लाल ने हँसते हुए शनिश्चर से कहा,—जजमान ! आप बेफिक्र रहिए, यह सब काम तो हमारा है, हम बात-की-बात में कर डालेंगे। अच्छा यह बतलाइए कि वह कौन आदमी है, जिसे वशीभूत करना है ? क्योंकि बिना उसके जाने तंत्र सिद्ध नहीं होगा ।

नाम का प्रश्न सुनते ही शनिश्चर हक्का बक्का हो गया। वह रधिया का नाम खोलना नही चाहता था। यंत्र दिखा कर उसे फँसाना चाहता था। नीच समाज ! देख ! तेरे भीतर कैसे-कैसे कुलांगार पड़े हैं। शनिश्चर को सोचते विचारते देख पण्डित जी ने कहा—जजमान चिन्ता न करें। मै सभी बातें गुप्त रखूँगा। मेरे द्वारा आपका अनिष्ट नहीं हो सकता। आप निर्भय कहिये, इसमें दुविधा होने पर कार्य सिद्ध नही होगा।

पण्डितजी के ढाढ़स देने पर शनिश्चर सिंह ने कहा—महाराज ! वह एक स्त्री है, उसका नाम न पूछिये। केवल इतने ही में काम कर दीजिये। इसके लिए रुपया आठ आना जो खर्च लगे हमसे ले लीजिये। मुझे आपका बड़ा भरोसा है, आप हमारे कुलगुरु हैं।

देखो ! इन कुलगुरुओं की छीछालेदर। अरे कुलगुरु है तो तुम्हें सुधारने के लिए न कि तुम्हें पापी और कुकर्मी बनाने के लिए। यहाँ तो जैसे चेला और वैसे ही गुरु मिले। निःसन्देह छटंकी समान गुरुओं ने ही देश को भ्रष्टाचारी बना दिया।

आखिर में शनिश्चर को कहना पड़ा। रधिया का नाम सुनते ही पंडितजी की वांछें खिल गईं। यद्यपि शनिश्चर सिंह ने कहा कि रधिया राजपूतनी है, परन्तु नाइन के आगे पेट कब छिप सकता है ? पण्डित जी हजारों घाट का पानी पिये हुए थे, तुरत समझ गये कि सुखुआ की बेटी रधिया को छोड़ और दूसरी नही हो सकती। क्योंकि उसके सुन्दरता की चर्चा गली-गली में फैल रही है। अच्छा ! मैं भी आज चमराने चल कर उसे देखूँगा। जरूर ही वह खूबसूरत होगी, नही तो ठाकुर क्यों रीझ पड़ते।

इस प्रकार मन में सोचसाच कर छटकी लाल मुस्कुराते हुए बोले—ठाकुर साहब, मेरे अन्नदाता ! आप तनिक न घबड़ाइये। मैं ३-४ दिन में ही आपको ऐसा मंत्र दूँगा जिसके प्रभाव से रधिया क्या इन्द्र की परी भी मोहित हो उठेगी। अच्छा, अब चलते हैं। अनुष्ठान करना पड़ेगा। सिद्ध कवच बनाना है। काम साधारण नही। कहते हुए उठ खड़े हुए। शनिश्चर सिंह ने पाँच रुपया उनके हाथों में जबरदस्ती डाल दिया।

पण्डित जो घर पर आये, परन्तु रधिया के रूप का घोड़ा उनके पेट में कूद रहा था। सन्ध्या के पहले ही वे चमराने की

ओर चल पड़े। रधिया घर के बाहर धान कूट रही थी। उसे देखते ही पण्डित जी मतवाले हो उठे। रधिया के आस पास यदि दो चार स्त्रियाँ नहीं होतीं तो पण्डित जी अवश्य उस पर टूट पड़ते। पास ही में अपने जजमान भीखू चमार के चौतरे पर जा जमे और व्यर्थ बातें करते हुए आध घंटे तक बैठे रहे। रधिया के घर में चले जाने पर निराश होकर घर लौट आये।

पण्डित जी को रात भर नींद नहीं आई। शनिश्चर का वशीकरण बनाना भूल गये। सवेरे ही स्नान से निवृत्त हो वशीकरण चन्दन लगाकर रधिया की खोज में चल पड़े। दैवात गली साफ करते हुए वह मिली। छटंकी लाल सामने ही एक किसान की चौपाल में जा बैठे और रधिया की ओर आँखे मारने लगे।

इसी बीच में रधिया की माँ आ निकली। पण्डित जी ने उसे बुला कर कहा—जजमानिन यदि कष्ट न हो तो मेरा गोंड़ा भी रधिया से साफ करवा दिया करो, जो कुछ कहोगी रुपया आठ आना महीना मे दिया करेंगे।

रधिया पण्डित जी के यहाँ जाने लगी। पण्डित जी नित्य सवेरे उसके आसरे बैठे रहते थे, उसके आने पर बार-बार तिरछी नजर मारा करते थे, परन्तु वह सुन्दर बालिका इनके पापपूर्ण संकेतों को समझने में सर्वथा असमर्थ थी। दो ही तीन दिन के बाद पण्डित जी के सुपुत्र ने भी रधिया के सुगठित

सुन्दर शरीर को देखा। अब क्या था? वह भी कामी कुत्ते के समान उसके पीछे-पीछे फिरने लगा।

धीरे-धीरे सप्ताह बीत गया। शनिश्चर सिंह मंत्र के लिए पण्डित जी के यहाँ स्वयं आ पहुँचे, परन्तु वहाँ मंत्र कहाँ था। जमींदार को देख पण्डित जी घबड़ाये, परन्तु अपने को सम्हालते हुए बोले—जजमान बैठो, तुम्हारा काम पूरा हो गया है। अभी मै मंत्र ला देता हूँ। घर में जाकर एक भोजपत्र के टुकड़े पर लाल स्याही से पण्डित जी ने कुछ अंट संट लिख कर शनिश्चर को थमा दिया, परन्तु इस बात की सूचवा दे दी कि अपवित्र स्थान में रखते ही तथा अपवित्र अवस्था में इसका ध्यान करते ही यह दैवी यंत्र गुणहीन हो जायगा।

शनिश्चर सिंह ने मंत्र का प्रयोग किया, परन्तु रधिया नही बोली। इधर शनिश्चर का सिपाही जालिम भी रधिया का रूप-सौन्दर्य देख मर रहा था। पण्डित जी और उनके पुत्र की भी दुर्गति हो रही थी। सबसे पहले शनिश्चर ने उसे छेड़ा। उसे अपने पास बुला कर हँसते हुए कहा—रधिया, धोती वगैरह तुम्हारे पास है? कल हमसे माँग लेना। वह बिचारी क्या जानती थी कि यह बूढ़ा जमींदार मुझे भ्रष्ट करना चाहता है। चलते समय शनिश्चर ने एक रुपया रधिया के के हाथ पर रख दिया। रुपया पाकर वह हँसती हुई घर पर पहुँची और माँ से सब समाचार कह दिया।

रधिया की माँ चतुर स्त्री थी। वह जमींदार के भाव को

ताड़ गई। उसने दूसरे ही दिन से रधिया को झाड़ू लगाने जाने से रोक दिया। अब तो तीनों चारो नरपिशाच मरने लगे। शनिश्चर से नहीं रहा गया, उसने एक रात में ५-७ सिपाहियों को रधिया को उठा लाने के लिये भेजा। इधर छटंकी लाल भी काले कपड़े से अपने बदन को ढंक सिद्ध बीसा यंत्र लेकर रधिया के घर में घुस कर एक एकान्त कोने में जा बैठे। छटंकी लाल के सुपुत्र और जालिम सिंह भी रात्रि में उस निरपराध अबला पर बलात्कार करने के लिये ठीक आधी रात को उसके घर के पीछे जा बैठे थे।

परन्तु वहाँ क्या ? घर सूना था। पहले दिन के समाचार से ही डोमड़े चौंक गये थे। वे सभी शनिश्चर की नीचता से परिचित थे। रधिया को मामा के घर भेज दिया था और उसकी माँ रात मे डोमड़ों के मुखिया के यहाँ सोया करती थी।

जमींदार के सिपाही, रधिया के घर मे घुस पड़े, पण्डित छटंकी लाल एक कोने मे पड़े हुये थे, सभी ने समझा यही रधिया है। वे सब अभी यही सोच विचार कर ही रहे थे कि शनिश्चर सिंह भी चार आदमियों को लिये हुए आ पहुँचा। बात की बात में सभी ने कपड़े में लपेट छटंकी लाल को उठा लिया और बड़ी तेजी से जमींदार के दीबानखाने में एक पलँग पर डाल बाहर से ताला बद कर दिया। थोड़ी ही देर में शनिश्चर भी हाँफता हुआ आ धमका। अपने सिपाहियों को उचित पुरस्कार दे, पहरे पर भेज दिया और आप धड़कते हुये हृदय

से दरवाजा खोल अन्दर गया। रधिया प्रसन्नता पूर्वक लेटी है यह देख कर शनिश्चर अत्यन्त प्रसन्न हुआ।

बस, अब क्या था? तुरन्त पलँग पर जा पहुँचा और प्यारी कहते हुए उसका मुँह खोलने लगा। परन्तु यह क्या? उसने मुँह के कपड़ों को दोनों हाथों से दबा लिया। शनिश्चर तो जान रहा था कि अभी लजा रही है, उसने बाराजोरी मुख का वस्त्र हटा दिया। अरे राम! राम! यह क्या? यह तो पं० छटंकी लाल निकल पड़े। दोनों को काटो तो खून नही।

शनिश्चर क्रुद्ध हो उठा। वह उसी समय सिपाहियों को लेकर रधिया के घर की ओर चल पड़ा। सामने दर्वाजे पर चार सिपाहियों को बैठा—शेष ५ सिपाहियो को लेकर पिछ-वाड़े की ओर गया। अन्धकार में पण्डित के सुपुत्र और जालिम सिंह को बैठे देख शनिश्चर ने सोचा कि अवश्य ये लोग डोमड़े हैं। इन लोगों ने ही कही रधिया को भगा दिया है। बस क्या था? शनिश्चर के संकेत मात्र से ही दोनों पर लाठियाॅ टूटने लगी। बात की बात में दोनों का कचूमर बाहर हो गया। फिर भी लज्जा के कारण दोनों मौन थे, परन्तु मार खाते-खाते घबड़ा उठे और चिल्लाने लगे। बाप रे बाप, बचाओ।

इस चिल्लाहट ने लोगों को जगा दिया। उस महल्ले में केवल चमार और डोमड़े रहते थे। सभी दौड़ पड़े उस अँधेरे में खूब लाठियाँ चली, बीसों के सर फूटे और कितने ही बेकाम

हो गये। इसी अंधकार में शनिश्चर की एक आँख जाती रही और उसके सभी सिपाही अधमुये हो गये।

उसी समय बीसों चमार और डोमड़े थाने पर दौड़ गये। पुसिल आ पहुँची। शनिश्चर सिंह और उनके सिपाही, जालिम सिंह और पण्डित छटंकी लाल के पुत्र घटना स्थाल पर ही पड़े पाये गये। भोर होते-होते बीसों आदमी पकड़ कर थाने पर लाये गये। शनिश्चर सिंह ने बहुत प्रयत्न किया कि हम मुक्त हो जायँ, परन्तु उसके पाप का घड़ा भर चुका था। वह अपने सिपाहियों के साथ ५-५ वर्ष के लिये जेल भेजा गया?

उधर बुधुआ के दश वर्ष पूरे हो गये। धीरे-धीरे वह ग्रेजुयेट हो गया। जेल में रहते हुये ही उसने ईसाई धर्म स्वीकार कर लिया था। अब वह बुधुआ नही रहा, लोग उसे मिस्टर वालडविन कहने लगे। जेल से मुक्त होते ही सरकार ने उसे तहसीलदारी में नौकरी दी। कुछ ही दिनों में वह तहसीलदार बना दिया गया।

मिस्टर वालडविन ने अपने मामा के यहाँ से रधिया और अपनी माँ को बुला लिया। रधिया का एक एम० ए० से विवाह कर दिया और यथासमय अपना भी एक पढ़ी लिखी ईसाई नवयुवती से सम्बन्ध कर लिया। कुछ दिनों के बाद बदलता-बदलता वालडविन अपनी जन्मभूमि के सब डिविजन में मजिस्ट्रेट होकर पहुँचा।

उस समय सब डिविजन में तीन केस चल रहे थे। पहला

पं० छटंकी लाल ने अपनी पुत्रवधू के साथ बलात्कार किया। साथ ही अनुकूल नही होने पर अपने पुत्र को जहर दे दिया, दूसरा रामपुर के जमींदार शनिश्चर सिंह ने अपनी विधवा गौरी पुत्री के साथ बलात्कार किया और तीसरा रामपुर के पं० नथुनी लाल ने एक नववर्षीया चमार की कन्या के साथ बलात्कार किया। कन्या के मर्म स्थान में बड़ी चोट पहुँची। नर्सों तथा लेडी डाक्टरो ने प्रमाणित कर बताया कि व्यभिचार के कारण ही कन्या के गुप्त स्थान में भयङ्कर चोट पहुँची है। पं० छटंकी लाल पॉच हजार की नकद जमानत पर छूटे थे, शनिश्चर और पं० नथुनी लाल भी दो-दो हजार की जमानत पर घर आये थे।

इस मुकदमें में वाल्डविन अपनी जन्मभूमि पर गया, आज पं० छटंकी लाल ने उसे जूता पहरे हुये ही अपने मन्दिर में कुर्सी पर जा बिठाया। सभी बातें हो जाने पर वाल्डविन ने कहा—वेल पं० छटंकी लाल! तेरा मन्दिर अपवित्र हो गया। मुझको जानता है? मै कौन हूँ—वही बुधुआ, सुखुआ का बेटा! जिस पर तुमने कभी मनमाना अत्याचार किया था। क्या तुम्हें पुरानी बातें स्मरण हैं?

बुधुआ का नाम सुनते ही पण्डित जी के होश उड़ गये। अब तो वे थर-थर कॉपने लगे। मन ही मन सोचने लगे, हाय! अब क्या होगा। अब तो रक्षा की कोई युक्ति नही। इस प्रकार तर्क वितर्क करते हुए उन्होंने अपना अन्तिम शस्त्र साष्टांग चला

दिया। पण्डित जी की देखादेखी शनिश्चर सिंह भी वाल्डविन के पैरों पर गिर पड़े। परन्तु पैरों पर गिरने से क्या होता है? न्याय जो कहेगा वही होगा। पंडित नथुनी लाल भी हाजिर किये गये, आते ही उन्होंने भी साष्टांग किया।

अपने सामने दुष्टों को गिरे देख वाल्डविन ने कहा,—ठाकुरो! मेरे सामने इस प्रकार गिरने से क्या लाभ होगा। कहो, यही श्रेष्ठ जातियों का कर्तव्य है? नीचों! तुमसे तो वे शूद्र जिन्हें तू अछूत कह कर पुकारता और उनसे भर-पेट घृणा करता है—कहीं अच्छे हैं। अरे, इस पाप से बढ़ कर भी हिन्दू धर्म में कोई पाप माना गया है?

इतना कहने के उपरान्त अपराधियों के साथ वाल्डविन गाँव के अस्पताल में आया, जहाँ शनिश्चर की पुत्री तथा चमार की कन्या मृत्युशय्या पर पड़ी थी। वहीं सबों के बयान लिये गये। छटंको लाल की पुत्रवधू भी बुलाई गई। पतिशोक के कारण वह व्यग्र हो रही थी। उसने रोते-रोते छटंकी के व्यभिचार की सारी बातें कह सुनायी।

शनिश्चर की पुत्री और चमार की कन्या की करुण कथा ने लोगो को रुला दिया। सभी थू थू करने लगे। हाय, हाय, गौरी और रोहिणी के ऊपर यह नारकीय अत्याचार! अबोध बच्चियों पर यह वीभत्स प्रहार! सर्वनाश! सर्वनाश! लोग पापियो के नाम पर थू थू करने लगे। चारो ओर से धिक्कारों की प्रतिध्वनि आने लगी।

वालडविन ने जमानतें रद्द कर दी और तीनों दुष्टों को हिरासत में ले लिया। मजिस्ट्रेट के हुक्म से तीनों हवालात में रक्खे गये। यथासमय यह मामला आरम्भ हुआ। अभियुक्तों ने छुटकारे की बड़ी कोशिश की, किन्तु उन्हें पाप का परिणाम भोगना ही पड़ा। छटंकी लाल को फाँसी की आज्ञा मिली। शनिश्चर ५ वर्ष के लिये कठिन कारागार का दण्डित हुआ तथा पण्डित नथुनी भी ६ वर्ष के लिये जेल भेज दिये गये।

समाज! देख, अपने सुपुत्रों की हरकतें देख चुका। अब और कुछ देखना शेष है? अरे, तू तो सब कुछ गवाँ चुका। हाय! पहले तो पर-स्त्री तक ही रहे, परन्तु यहाँ तो पुत्री तक तूने न छोड़ा। अनुजतनया, पुत्रवधू और मित्र की स्त्री से भी घात किया। भंगिनों और नीच डोमड़ों की स्त्रियों को भी नहीं छोड़ा। हा! इन्हीं कर्मों से अपने पूर्व पुरुषों की उज्ज्वल कीर्ति को कलंकित कर दिया। समाज! नीच समाज! आँखें खोल। अरे अब तो सुधर, यह कुंभकर्णी निद्रा तुम्हारी कब टूटेगी? तेरे कुलांगार कब सदाचारी बनेंगे? शीघ्र उन्हें राह पर ला अन्यथा नाश हुये बिना नहीं रहेगा।

५

पूर्वाभास

दुराचारी समाज ने अपने को नारकीय बना दिया। ओह ! दिशायें काँप उठी, आकाश सिहर गया तथा पृथ्वी पापियों के बोझ से दबने लगी। पापी समाज ! देख ! आज विधवाओं के अमूल्य आँसुओं तथा दग्धकारी आहों से तेरी यह अधोगति हो रही है।

बाल विवाह ने तेरा सर्वस्व नाश किया, आठ-आठ नौ-नौ वर्ष के बालकों के विवाहों ने देश को विधवाओ से भर दिया। अभागा समाज ! तेरे ही घर में दो-दो और चार-चार वर्ष की दुधमुँही बच्चियाँ विधवा बनी रो रही हैं। हजारों दश-दश

पाँच-पाँच वर्ष की बालिकायें आँसू बहा रही हैं तथा एक नहीं लाखों युवतियाँ ढाहे मार रही हैं। समाज, यह क्या है? किसने इन बिचारी अबलाओं को नष्ट किया, किसकी काली करतूतों से इन अबलाओं का संहार हुआ?

समाज! इसका दोषी कौन है? इसके अतिरिक्त जब विधवा बालिकायें युवावस्था में पदार्पण करती हैं, जब उनकी भृकुटी नुकीली हो जाती है तथा अंग-अंग में मादकता भर जाती है—ब्रह्मचर्य के कारण जब उनकी सुंदरता छिटक पड़ती है—कौन उन्हें भ्रष्ट करने के लिये आगे बढ़ता है? समाज! सदाचारी समाज! दीन अबलाओं का रक्षक समाज! बोल! उन युवती अबलाओं को कौन पापी उन्हें स्वर्ग से नरक में ढकेल देता है? क्या इसका दोषी तू नहीं है?

हा! तेरे ही कुलांगार कामी कुत्ते के समान इनके अमूल्य सतीत्व को बात की बात में पानी की तरह बहा देते हैं। तेरे ही दुराचारी पुत्र इन सतियों को व्यभिचार का पाठ पढ़ा कर इन्हें अभीष्ट से गिरा देते है। समाज! तू ही इन विधवाओं के अधःपतन का कारण है। तू ही बरबस उन्हें व्यभिचारिणी बनाता है। अनुकूल न होने पर तू ही उनके साथ बलात्कार करता है—निःसन्देह तू ही उनके शरीर में कामाग्नि भड़का कर उन्हें किसी ओर का नही रहने देता।

समाज! पाप करने से तू नही डरता। छिप-छिप कर गोमांस खाता है, परन्तु संसार के सन्मुख गोभक्त बनने की

डींगें मारता है। कैसा आश्चर्य! करोड़ों विधवाओं के साथ व्यभिचार करता है। समाज! नारकीय समाज! काम के झोंके में अपने को उन अबलाओं के चरणों में डाल देता है—कामी कुत्ते के समान अपने को न्योछावर कर देता है, परन्तु नहीं, कुछ ही दिनों के बाद जब विधवा गर्भवती हो जाती है-अत्याचारी आँखे फेर लेता है। फिर तो अपने को सदाचारी सिद्ध करने के लिये, सत्य और धर्म की हिंसा करने में, गंगा और गोविन्द उठाने में, गौ और गुरु की शपथ खाने में जरा भी नहीं हिचकता। यह सत्य अथवा असत्य है?

ऐसे लाखों काण्ड हो चुके और लाखों दिन दहाड़े हो रहे हैं। पतित समाज की इस काली करतूत को संसार जानता है। विषय वासना की तृप्ति के लिये विधवाओ को सर्वस्व न्योछावर किया, उन्हें हृदय की साम्राज्ञी बनाया, उनके रत्ती-रत्ती आदेशों का पालन किया, परन्तु शोक! गर्भवती होते ही उन अबलाओं को फटकार दिया—उनके प्यार को पैरों से कुचल दिया। हा! निर्दयी समाज! क्या इससे भी बढ़ कर निर्दयता हो सकती है? क्या इससे भी बढ़ कर कोई और अमानुषिक कर्म हो सकता है? कदापि नहीं।

अरे अधम समाज! तू तो दानव-दल से भी बढ़ गया। असुर और निशाचरों का समाज भी तुझसे कहीं श्रेष्ठ था। निःसन्देह वे स्त्रियों पर बलात्कार करते थे, परन्तु बहू और बेटियों की प्रतिष्ठा करते थे। अपना और पराया समझते थे।

इसके अतिरिक्त एक गुण उनमें सबसे उत्तम यह पाया जाता था कि जिसे वे बलात्कार पूर्वक भ्रष्ट करते थे—जिसका सत्य और धर्म नष्ट करते थे—आजीवन उसका पालन करते हुये उसे सुखी रखते थे।

परन्तु तू ने क्या किया ? गर्भवती होते ही सबसे पहले तो तुमने गर्भ गिराने की चेष्टायें की, एक नही सैकड़ों औषधियाँ खिलवायी, परन्तु इतने पर भी यदि ईश्वर को स्वीकार नही हुआ तो तुमने उस अनाथ अवला को तीर्थों में ले जाकर छोड़ दिया। नीच, पापी, क्रूर समाज ! हाय ! तुम्हें ऐसा करते तनिक लज्जा नही आई। अरे अब वह बिचारी क्या कहेगी ? तेरी चाँदी पर चढ़ कर नाचेगी या तेरी छाती पर कोदों दलेगी। देख, वह क्या करती है।

तीर्थों तथा बड़े-बड़े नगरों में छोड़ी हुई गर्भवती विधवायें गुण्डों के चक्र में पड़ जाती हैं। सहस्रों व्यभिचारी लंपट उन्हें पाकर अपनी कामाग्नि शान्त करते हैं। पीछे वे बेचारी स्त्रियाँ या तो विधर्मियों के चंगुल में जा फँसती हैं अथवा उन्हें वेश्याओं के घरों में शरण लेनी पड़ती है। समाज ! तेरी लाखों विधवा पुत्रियाँ, वेश्या बनी तुझ पर थूक रही हैं तथा करोड़ों विधर्मियों को उत्पन्न कर तेरे पाप का प्रतिशोध करा रही हैं। देखता नही प्रति वर्ष तेरी लाखों खोपड़ियाँ चूर हो रही है। समाज ! नीच समाज ! नारकीय समाज ! तू इतना निर्लज्ज हो गया ?

दुराचार का ताण्डव

प्रात. काल का सुहावना समय था। प्राची दिशा लाल हो रही थी। बाल सूर्य्य की अरुण रश्मियाँ पृथ्वीतल पर थिरक-थिरक कर नाच रही थी। प्रात. समीर मन्थर गति से चल रहा था। ठीक इसी समय मैं अपने कमरे में बैठा हुआ एक कहानी का प्लाट सोच रहा था कि सहसा दरवाजे के बाहर से आवाज आई—"बाबू! दो पैसा दे दो।" मैंने सर उठाया तो देखा कि एक अठारह वर्ष की युवती गोद मे एक बच्चा लिये कह रही है "बाबू! दो पैसा दे दो।"

उसके बाल बिखरे हुए तथा वस्त्र अस्त व्यस्त और फटे हुए थे, चेहरे पर मुर्दनी छायी हुई थी, उसका रुग्ण तथा जीर्ण

शरीर सहज ही में मनुष्य के हृदय में दया का संचार कर देता था। देखने से विदित होता था कि किसी समय में वह अपूर्व सुन्दरी रही होगी, पर समय के प्रवाह से उसका वह सौन्दर्य नष्ट हो गया था। इस वेश का निरीक्षण कर मेरे हृदय में उसके प्रति सहानुभूति उत्पन्न हो गयी और अनायास ही मेरे मुख से निकल पड़ा—"कौन हो तुम ?"

उसने उत्तर दिया—"एक दु.ख की मारी बेचारी। आज दो दिनों से मैंने अन्न का दर्शन भी नही किया है। मेरा यह नवजात शिशु दूध के अभाव से भूखों मर रहा है और वह दुराचारी, नीच समाज, जिसने मेरा सर्वस्व हरण कर मुझे दर-दर की भिखारिणी बनाया है, मेरी दशा पर तनिक भी तरस नही खाता। आह!" इतना कहते-कहते वह हॉफने लगी।

उसके उत्तर को सुन कर मेरे हृदय में उसकी कहानी सुनने की बड़ी प्रबल इच्छा उत्पन्न हुई। मैंने उसे अपने पास बुलाकर बिठाया और उसके खाने का प्रबन्ध कर दिया। जब वह खा-पीकर निश्चिन्त हुई, तब मैंने उससे उसकी कहानी सुनने की इच्छा प्रकट की। प्रथम तो उसने अस्वीकार किया, पर मेरे बहुत कहने-सुनने पर अपनी दु.ख से भरी कहानी सुनाने के लिये सहमत हुई। उसने इस प्रकार अपनी कहानी आरम्भ की—

"मै शाहाबाद के अन्तर्गत एक ग्राम की निवासिनी हूँ। मै अपने माँ-बाप की एकलौती पुत्री थी। वे मुझे अत्यन्त

प्यार करते थे और यही प्यार मेरे अवनति का मुख्य कारण हुआ। माँ की इच्छा यह थी कि वह जितना जल्द हो सके दामाद का मुख देखें। इसका फल यह हुआ कि मेरा विवाह जव मैं आठ वर्ष की अबोध बालिका थी एक वर्ष के बालक के साथ हो गया। समाज ने इस विषय में जरा भी आनाकानी न की, बल्कि यथायोग्य साथ दिया। मेरी माँ की मनोकामना पूरी हुई और उन्होंने दामाद का मुख देख कर अपने जीवन को धन्य समझा। मै विवाह क्या है, यह जानने में सर्वथा असमर्थ थी कि विवाह कोई अत्यन्त सुखद घटना है और इसमें सभी को खुशी मनानी चाहिये।

मेरा विवाह हुए दो साल बीत गये। मेरी ससुराल में महामारी का वड़ा प्रचंड प्रकोप हुआ। मेरे पति उसके क्रोध के आखेट हो गये। बस! उन्हींके साथ-साथ मेरा सौभाग्य-सूर्य्य भी अस्त हो गया। माँ ने यह समाचार सुना, उसके हाथ के तोते उड़ गये। ढाढ़ें मार-मार कर रोने लगी। उसके करुण क्रन्दन से सारा गाँव काँप उठा, पर मैं कुछ भी न समझ सकी, कि यह सब क्यों हो रहा है। जब मेरे हाथ की चूड़ियाँ चूर की गयी तथा सौभाग्य का सिंदूर धो दिया गया, उसी समय मुझे अनुभव हुआ कि मेरी कोई वस्तु, बहुत ही प्यारी वस्तु सदा के लिये मुझसे हरण की जा रही है। माता के हृदय पर इन सब बातों की ऐसी चोट लगी कि वह कुछ ही दिनों के बाद इस नश्वर संसार को त्याग स्वर्गधाम को पधार गयी।

पति की मृत्यु के उपरान्त उनके जेष्ठ भ्राता आकर मुझे लिवा ले गये। मैने दस वर्ष की अवस्था में ससुराल का मुख देखा, पर वह मेरे लिये एक उजड़ा हुआ संसार था। सास ने मुझे देख कर विलाप करना आरम्भ किया और तरह-तरह के कटु वाक्यों से मेरा सन्मान करने लगी। मैं उन वाक्यों का अर्थ उस समय समझने में असमर्थ थी, इसलिये उनका प्रभाव मेरे हृदय पर कुछ भी नही पड़ा।

वहाँ पर जो दुःख मैने भोगे, उन्हें कहते हुए जिह्वा काँप उठती है। हृदय थर्रा जाता है। प्रातःकाल से सन्ध्या तक पशु की तरह कार्य करते रहने पर भी फटकार ही सुननी पड़ती थी। किसी कार्य्य में जरा भी चूक होने पर सास जी उबल पड़ती और तरह-तरह के अपशब्दों से मेरा स्वागत करती थी। घर की सौभाग्यवती स्त्रियाँ मेरी छाया भो अपने शरीर पर पड़ना गवारा नही करती थी।

चार वर्ष बीत गये इन दिनों के बीच में मै कई बार मायके गयी और ससुराल आयी, पर मुझे सुख कही भी नही मिलता था। अब मेरी अवस्था चौदह वर्ष की थी। मैने बाल्यकाल समाप्त कर यौवन में पदार्पण किया। लड़कपन की चपलता धीरे-धीरे मिटने लगी। अब तो उसके स्थान पर युवापन की छाप जमने लगी। हाय, हाय। युवापन की मस्ती ने मुझे बेचैन कर दिया। कोयल की कूक सुनते ही हृदय में धूक उठती थी तथा वसन्त की सौरभ से सनी वायु मुझे उन्मत बना देती थी।

इस वार जव मैं ससुराल आयी तो मैं एकदम विखर चुकी थी। मेरे पति के भाई साहव की कुदृष्टि मुझ पर पड़ी। वे मुझे अपनाने की जी जान से चेष्टा करने लगे। उसके बाद की कहानी कहने के लिये मुझे विवश न कीजिये। ओफ! मेरा सर घूमने लगा "पानी! पानी!"

इतना कह कर वह वेहोश हो गयी। मैं हड़बड़ा कर उठा और दौड़ कर पानी लाया। उसके मुँह तथा सर पर पानी देने और हवा करने से वह शीघ्र ही सचेत हो गयी। मैंने उसे सान्त्वना दी। कुछ देर के पश्चात् वह फिर अपनी कहानी कहने योग्य हो गयी और कहने लगी—

"पहले तो मैं उनकी इच्छा नहीं समझ सकी, पर कुछ दिनों के वाद जव उन्होंने मुझे एकान्त में बुला भाँति-भाँति के प्रलोभन देकर अपनी मनोवाञ्छा प्रकट की तव तो मुझे काठ मार गया। मेरा हृदय किसी अज्ञात आशंका से काँप उठा। मैंने हृदय में ठान लिया कि चाहे जो कुछ हो जाय मैं सत्य का पथ कदापि न छोड़ूँगी।

जव मैं किसी प्रकार भी उनकी बातों में न आयी, तव वे आग बबूला होकर बोले—"हरामजादी! तू जितनी सत्यनिष्ठ तथा पतिव्रता है, उसे मै खूब अच्छी तरह जानता हूँ। याद रख, यदि तू मेरा आलिङ्गन न करेगी तो तुझे संसार के सबसे दारुण दुःख का आलिङ्गन करना होगा।'

जव वे चले गये, तव मै अपने कमरे में जाकर मन ही मन

रोने लगी। मुझे अपनी माता की याद आई। आँखों से अविरल आँसूओं की धारा बह निकली। मै कब तक रोती रही इसका मुझे यथार्थ ज्ञान नही हुआ। जब सास ने पुकारा तब मुझे याद आया कि घर का अभी सब कार्य्य करना शेष है। मै घबड़ा कर बाहर निकली। सास जी भूखी शेरनी की तरह कमरे के द्वार पर ही विराजमान थी। वे मुझे देखते ही अचानक टूट पड़ी और लात घूसों से मेरा स्वागत करते हुए बोली—दुष्टा! कुलटा! घर का सब काम पड़ा है और आप मौज उड़ाती है।

हाय रे वैधव्य! तेरा बुरा हो। जिस पर तेरा प्रकोप होता है उसका सुख स्वप्न हो जाता है। उसका हरा भरा सोने का संसार मिट्टी में मिल जाता है। संसारिक वस्तुओं में कोई तत्व शेष नही रह जाता। निःसन्देह उसके लिये सारा संसार सूना हो जाता है।

खैर, जब सास जी का क्रोध कुछ ठंढा पड़ गया तब उन्होंने मुझे घर साफ करने की आज्ञा दी। मैंने तुरत उनकी आज्ञा का पालन किया। मेरे दुःख का बोझ हलका होने के बदले दिनों-दिन बढ़ता ही गया। नित्य मुझे सास की मार तथा झिड़कियाँ खानी पड़ती थी, पर इन सब कष्टों को मैने हृदय पर पत्थर रख कर सहन किया और सदा पति के जेष्ठ भ्राता के चंगुल से बचने की चेष्टा करती रही, परन्तु एक दिन एकान्त पाकर उस दुष्ट ने मेरे साथ बलात्कार कर ही दिया। मेरे चिर

संचित सतीत्व के कोष को बात-की-बात में लूट ही लिया। मै लाख रोयी चिल्लायी, पर उसे तनिक भी दया न आयी।

अब मेरा इस संसार में क्या शेष था, जिसकी आशा से मै जीवन धारण करती। मैंने निश्चय किया कि इन कष्टों से छुटकारा पाने का एकमात्र उपाय यही है कि मै अपने जीवन का ही अन्त कर दूँ। ऐसा विचार कर मैं एक दिन जब सब लोग निद्रादेवी की गोद में विश्राम कर रहे थे, घर से निकल पडी।

माता भागीरथी मेरे स्वसुराल के बहुत समीप थी। मैं किसी प्रकार उनके तट पर पहुँच गयी और विना कुछ सोचे विचारे अपने को उनके अन्तस्थल में छिपा लिया। जब मेरी आँखें खुली तब देखा कि मैं एक नौका में पड़ी हुई हूँ और कई मनुष्य मेरी सेवा मे लगे हुए हैं। मुझे आँखे खोलते देख कर एक वृद्ध मनुष्य जो स्वच्छ वस्त्र परिधान किये हुए थे, बोले—"तुम कुछ भी चिन्ता न करो, चुपचाप आराम करो।" मैंने उस साधु पुरुष को मन ही मन प्रणाम किया और आँखें बन्द कर सो गयी। कुछ दिनो के बाद जब मै पूर्णतया स्वस्थ हो गयी, तब वृद्ध महाशय ने मुझसे मेरी कहानी पूछा। दुःख-गाथा सुन कर उन्होने मेरी दशा पर शोक प्रकट किया और यथाशक्ति मेरी सहायता करने की प्रतिज्ञा की।

वे काशी के निवासी थे। मुझे वे अपने साथ वहाँ ले गये और एक विधवाश्रम मे स्थान दिला दिया। आश्रम के अध्यक्ष

एक खद्दरधारी युवक थे। उनके अङ्ग-अङ्ग से सरलता टपकती थी। सदाचार के मानो वे अवतार थे। उन्होंने आदर के साथ मुझे आश्रम में स्थान दिया। वहाँ मै अपनी अन्य बहनों के सरल वेश तथा उनकी स्वाभाविक सादगी देख कर अत्यन्त प्रसन्न हुई और मेरे हृदय को शान्ति मिली। पर कुछ ही दिनों के पश्चात जब मै वहाँ के वातावरण से पूर्णतया परिचित हो गयी, तब तो मुझे इस फन्दे में फँसने का अत्यन्त दु ख हुआ। अब मेरे छुटकारे का कोई उपाय नही था। अध्यक्ष महोदय नित्य मेरे पास आते और मेरे सुख के लिये समुचित प्रबन्ध करते थे। एक दिन उन्होंने मुझे अपने खास कमरे में बुलाया। मैंने अनेकों प्रकार का बहाना कर जाने से इनकार कर दिया। पर मेरा छुटकारा किसी प्रकार भी नही हुआ। विवश होकर मैं उनके पास गयी। उन्होंने मेरा बड़ा आदर किया और उचित स्थान पर बिठाया, फिर उन्होंने मुझसे प्रेम की बातें करनी शुरू की। क्रोध के मारे मेरा बुरा हाल हो गया। मैंने उसे कितना ही भला बुरा कहा, पर उस कामान्ध नर-पशु के पाषाण हृदय पर इसका प्रभाव कुछ भी न पड़ा। मुझे अपनी बातों मे नही आती देख वह मेरे चरणों पर गिर पड़ा और तरह-तरह के सब्ज बाग दिखाने लगा। अब मै अपना क्रोध संवरण न कर सकी और उसके सिर पर एक लात कस कर जमा दी। इस पर वह नरपिशाच मुझ पर गर्ज कर टूट पड़ा और जो अमानुषिक व्यवहार उसने मेरे साथ किया, उसे कहते जबान

थर्रा जाती है। हृदय फटा जाता है। उसने मुझे बलजोरी भ्रष्ट किया।

उसके बाद मुझे नित्य उसकी इच्छा पूरी करनी पड़ती थी और नहीं करने पर भाँति-भाँति के कष्ट व अत्याचार सहन करने पड़ते थे। कुछ दिनों के उपरान्त मुझे गर्भ रह गया। उस दुष्ट ने गर्भपात करने के लिये तरह-तरह की दवाइयाँ मुझे खिलानी चाही, पर मैं किसी प्रकार भी इस गुरुतर पाप को करने के लिये सहमत नही हुई, तब उसने लाचार होकर मुझे आश्रम से निकाल दिया।

उसके बन्धन से मुक्त होकर मुझे शान्ति मिली। मैं भिक्षाटन कर अपना निर्वाह करने लगी। सयोगवश एक वृद्धा मुझे मिली। उसने मुझे अपने साथ रखना स्वीकार किया। वह बहुत दरिद्र थी। जो कुछ मैं भिक्षाटन करके ले आती, उसीसे किसी प्रकार हम दोनों का निर्वाह होता था। वह बेचारी सदा मेरी सेवा में तत्पर रहा करती थी और उसीका फल है कि मैं इस बच्चे का मुख देख सकी, पर परमात्मा को यह भी स्वीकार नही था। इसके उत्पन्न होने के आठ ही दिनों के बाद वह भी चल बसी। अब मेरे सिर पर कष्टों का समुदाय टूट पड़ा। उधर मकान वाले ने अब एक दिन भी रहने देना स्वीकार न किया। विवश होकर मुझे वह घर त्याग देना पड़ा।

इसी बच्चे की आशा से मैने अब तक अपने जीवन की रक्षा की थी। मेरी वह आशा फलवती हो गयी। अब मैं सुख-

पूर्वक मर सकूँगी। इतना कहते-कहते वह पुनः अचेत हो गयी। मैंने दौड़ कर बच्चे को अपनी गोद में छिपा लिया और उसे विस्तर पर लिटा दिया। तत्पश्चात् नौकर को डाक्टर बुलाने की आज्ञा दे उसकी सेवा सुश्रूषा कराने लगा। डाक्टर ने आकर उसकी नाड़ी देखी और कहा कि रोग सांघातिक है तथा बचने की कोई आशा नहीं है।

कोई दो घण्टे के पश्चात् उसने आँखें खोलीं। इस बार वह कुछ प्रफुल्लित मालूम हुई और उसके मुख पर एक अपूर्व प्रभा दृष्टिगोचर हुई। उसने मुझे पास बुला कर कहा—"अब मैं नहीं बचूँगी। आप दयालु पुरुष हैं और मुझे आशा है कि आप मेरे हृदय के टुकड़े को अच्छी तरह रखेंगे। यही आपसे मेरा अन्तिम अनुरोध है।" इसके बाद उसकी आँखें बन्द हो गयीं। अङ्ग-अङ्ग शिथिल हो गये। एक हिचकी आयी और उसकी इस लोक की लीला समाप्त हो गयी। मरने के उपरान्त उसके अधर पर मुस्कान की एक पतली रेखा अङ्कित थी, जिससे विदित होता था कि उसने सुखपूर्वक प्राण त्याग किया।

मैं उसकी धरोहर को सदा कलेजे से लगाये रहता हूँ। यही उसकी एक मात्र निशानी है। हा! पापी, नीच, हतभाग समाज! आँखें खोल और अपने कुकृत्यों की ओर एक बार निहार।

६

पूर्वाभास

वेश्याएँ अप्सराएँ हैं। उनके एक मृदु मुस्कान पर नंगे होकर ताण्डव करना इस समाज का पहला काम है। उधर उनके सुन्दर अधरों पर मुस्कान की रेखा दिखाई कि इधर समाज ने अपने को दिगम्बर बनाया। उधर जैसे ही ओठ खुले कि इधर थिरकना भी आरम्भ हो गया। वाह रे समाज! तू खूब थिरक चुका, शताब्दियों तक अपना नंगा नाच दिखा चुका, अब तो तनिक शान्त हो।

तेरा बच्चा बच्चा जानता है कि वेश्याएँ पैनी छुरी हैं, विष से बुझी कटारी हैं, प्रत्यक्ष नाश की निशानी हैं। समाज तेरी सभ्य आत्माएँ जानती हैं कि ये रंडियाँ विष से भरे हुए सोने

की कलशी है, इनका मुख जारों और नीचों के थूकने की जगह है, इनका अणु-अणु दूषित है। वास्तव में ये अपवित्रता की मूर्ति हैं। निश्चय ही इनके संसर्ग से धन और धर्म का नाश होता है। सब से बड़ी बात तो यह है कि इन दुराचारिणियों के द्वारा जीवन का अमूल्य धन—मोक्ष जाता रहता है।

समाज! क्या यह सच है? यदि हाँ! तो तेरे बड़े-बड़े पुजारी, महन्त, आचार्य और अगुये ये क्या कर रहे हैं? तेरे बड़े-बड़े स्नातक रात्रि में बोर्डिंगों से भाग-भाग कर कहाँ जाते है? तेरी सहस्रों सभ्य कहलाने वाली आत्माएँ लुक-छिप कर कहाँ पहुँचती है? सहस्रों सदाचार की डींगें मारने वाले, अनेकों अपने को आचारी, विचारी और ब्रह्मचारी कहने वाले सपूत लोगों से दृष्टि बचा कर कहाँ जा रहे हैं? क्या तू जानता है?

अवश्य जानता होगा। यदि तू नहीं जानता तो मुझसे सुन। ये तेरे लाखों सुपुत्र उन्हीं वेश्याओं के पवित्र धाम में अपनी काया की शुद्धि के लिए पहुँचते हैं। तेरी आत्माएँ वेश्यालयों में जाकर चतुर्फलों को ढूँढ़ती फिरती है और सुन, उस काम के निकेतन में वेश्या देवी की इष्ट सिद्धि के द्वारा तेरा उद्धार करने के लिये यह सब हो रहा है। तेरे करोड़ों कामी कुलांगार कामरूपिणी कामान्ध वेश्याओं के द्वारा तेरा नाश करा रहे हैं।

भ्रष्टाचारी समाज! देखता नहीं क्या हो रहा है? सब कुछ करते हुए भी अनजान बनता है! अज्ञात कह कर बचने की चेष्टा

करता है। माया-ग्रसित होकर भी एक दम मछीन्द्रनाथ वनना चाहता है ? स्वयं सब पापों को करते हुए भी संसार के सामने पुण्यात्मा वनने को चेष्टा करता है ? संसार अन्धा नहीं है। तेरे सभी कुकर्मों को तीक्ष्ण दृष्टि से देख रहा है। अब तू अपने को निर्दोष नहीं रख सकता। संसार ने तेरे भीतर के छिपे हुए विष को देख लिया है।

तूने ही बालविवाह किया, वृद्धो का कन्याओं से जोड़ा लगाया, एक-एक पुरुष को पाँच-पाँच सात-सात स्त्रियों को रखने की अनुमति दी। कहो, यह सभी तुम्हारे ही द्वारा हुआ अथवा किसी दूसरे की मति से ?

नहीं ! सब कुछ तुम्हींने किया। बालविवाह, वृद्धविवाह तथा बहुविवाह के कारण देश में विधवाओं की संख्या बढ़ गयी। कुछ लोगों ने विधवाओं का पुनर्विवाह करना चाहा; परन्तु तुम्हींने अपनी लंबी नाक दिखा कर रोक दिया। संसार के सामने डंका पीटते हुए कहा—विधवा विवाह अधर्म है, अन्याय है, पूर्ण अनर्थ है। तुम्हींने धर्म की दुहाई दे-देकर, विधवाओं को तड़पा-तड़पा कर मारा। अन्त में उन बेचारी सती साध्वियों को बलात्कार पूर्वक नष्ट भी कर डाला। हत्यारा समाज ! बोल ! यह क्या किया ? विधवाओं का विवाह करा देना अनर्थ है और अधर्म है, परन्तु उनके साथ छिप-छिप कर व्यभिचार करना पुण्य है ? धर्म है ? सत्कर्म है ? धत्तेरे धर्म की, नीचता की भी कोई सीमा है ?

तुम्हारे ही अत्याचार से लाखों विधवाएँ वेश्याएँ बनीं, फिर भी तेरी आँखें नही खुली ! नि सन्देह तूने अपने को पतन के मार्ग पर चला दिया। यज्ञ में, जप में, मन्दिर मे, पूजा में, पाठ में, उत्सव में तथा माङ्गलिक कार्यों में उनके बिना तेरे पेट का पानी नही पच सकता।

बेटे का विवाह है, मुन्नीजान आयी है, तबलची लिये हुए बाबू भइयों के बीच में थिरक रही है। दुलहा भी देख रहा है, उनके चचा और बाप भी एक ही दृष्टि से देख रहे हैं। दादे और परदादे वहाँ जितने बैठे है, सभी प्रेम की दृष्टि से उस नर्तकी की ओर निहार रहे हैं। यह क्या है ? तेरे सुधार के लक्षण है अथवा नाश के कारण ?

समाज ! अरे इतना तो देख, इतना तो अपने सुपुत्रों को समझा कि जिस वेश्या के साथ तेरा ससर्ग है यदि दैवात् गर्भ धारण कर गयी और कन्या उत्पन्न हुई, उस समय सारा संसार तेरा दामाद होगा या नही ? इसके अतिरिक्त सभी बातें तू सोच। सुधार तुझी से होगा। तूने ही लाखों आत्माओं को वेश्यागामी बनाया है और अब तू ही उन्हें सदाचारी और सद्विचारी बना।

अमृत में हलाहल

उससे प्रथम वार एक वारात में भेंट हुई थी। कुछ ही देर की वात से मुझे पूर्णतः विदित हो गया था कि उसके अन्तस्तल में भीषण ज्वाला धधक रही है। रह-रह कर वह विक्षिप्त सी हो उठती है। परन्तु उसकी सुन्दर आँखों से व्यभिचार की लपटें निकल रही थीं। कोमल मुखमण्डल पर प्रायश्चित्त का पवन अट्टहास करता हुआ थिरक रहा था। उसकी नुकीली भृकुटियों पर रुद्र का ताण्डव हो रहा था, वह पूर्ण अशान्त थी।

मैंने उससे पूछा—"कमला! तुम्हें इस नारकीय जीवन से घृणा नही मालूम होती?"

मेरे इस प्रश्न को सुन कर उसके हृदय से एक दग्धकारी आह निकली। कुछ क्षण तक तो वह मौन धारण किये रही, परन्तु मेरे पुन आग्रह करने पर शान्ति भङ्ग करते हुए वह बोली—"महाशय! आज के पूर्व न जाने कितने मनुष्यों से मेरा संसर्ग हुआ पर किसी ने मुझसे यह प्रश्न नही किया। मेरी धारणा थी कि संसार में कोई भी सुहृदय नही है, पर अब मुझे विश्वास हुआ कि विश्व में सत्पुरुषों का भी अभाव नही है। मेरी कहानी सुन कर आप स्वयं समझ जायँगे कि यह निष्ठुर नीच समाज ही मुझे पाप के विकट गह्वर में प्रविष्ट कराने का एक मात्र कारण है।"

मुझे उसकी दशा पर दया आयी, हृदय द्रवीभूत हो उठा तथा उसकी करुण कहानी सुनने की उत्कट इच्छा उत्पन्न हुई। मैंने अपना मनोभाव उसपर प्रकट किया। बहुत आग्रह करने पर वह किसी प्रकार स्वीकृति देते हुए बोली—"यदि आप मुझ दु खिनी पर दया कर दु ख गाथा सुनना चाहते हैं तो एक बार मेरे घर पधारने की कृपा करें। वहाँ मैं अपनी आद्यो-पान्त कहानी आपको सुना दूँगी। उसे सुन कर आप अनुभव करेंगे कि इस पतित समाज के अन्तर्गत कैसे-कैसे जघन्य कर्मों का नग्न ताण्डव हो रहा है।

सन्ध्या का सुहावना समय था। चार बज चुके थे। भगवान भास्कर दिन भर पृथ्वी को अपनी तप्त किरणों से तपा विश्राम करने के लिए पश्चिम दिशा में दौड़े चले जा रहे थे।

मैं अपने एक मित्र के साथ कमला के घर की ओर अग्रसर हुआ। उसने मुझे बड़े आदर के साथ एक स्वच्छ स्थान पर बिठाया। कुछ समय वार्तालाप करने के उपरान्त वह अपनी करुण कहानी कहने लगी—

मैं जाति की कायस्थ हूँ। जब मैं अबोध बालिका थी, उसी समय पिता की मृत्यु हो गयी। मेरी माँ के सिर पर दुःख का पहाड़ टूट पड़ा। मेरा मुख देख-देख कर वह अत्यन्त विलाप करने लगी। कुछ दिनो तक इसी प्रकार दु ख के दिन व्यतीत हुए, परन्तु समय के प्रवाह के साथ ही साथ यह दु'ख भी विस्मृत हो गया। अब मै विवाह के योग्य हो गयी। माता के शरीर को यह चिन्ता घुन की तरह खाने लगी। वह मेरे लिये योग्य वर की खोज में जी जान से लग गयी।

परन्तु उसकी सब चेष्टाएँ व्यर्थ गयी। घर मिलता तो वर नही और वर योग्य मिलता तो घर में कोई न कोई अवगुण निकल आता था। अन्त में वह हताश होकर निश्चेष्ट हो बैठी। मैं उसकी आँखों की तारिका थी, मुझे वह सब प्रकार से सुखी रखना चाहती थी, पर उसकी आशा पूरी नही हुई। फल इसके ठीक विपरीत हुआ। माता की विपत्ति देख मुझसे रहा नही जाता था।

यह हाल सुनकर पुरोहित जी एक दिन मेरे घर आये। उन्होने मेरी माँ को बहुत समझाते हुए कहा—"जजमानिन ! मेरे रहते आपको चिन्तित होने की आवश्यकता नही हैं। वर

तो मै बात-की-बात में लाकर आपके सन्मुख उपस्थित कर दूँगा।" आप चिन्ता न करें। कमला के लिये तो मैं ऐसा घर वर ठीक करूँगा, जिससे इसे जन्म भर किसी प्रकार का कष्ट न हो।

उनकी बातों को सुन कर माँ को कुछ ढाढ़स हुआ। उसने कुछ रुपये देकर उन्हें वर खोजने के लिये विदा किया। पुरो-हितजी महाराज प्रसन्नता के साथ आशीर्वाद देते हुए रुपये लेकर, शीघ्र लौटने का वचन देकर मेरे घर से चलते बने।

उनकी तत्परता तथा अविरल परिश्रम के फल स्वरुप मेरा विवाह बहुत शीघ्र स्थिर हो गया, माँ की मनोकामना पूरी हुई उनका चिर वाञ्छित फल मिला।

घर में विवाह की तैयारियाँ होने लगी। माँ ने अत्यन्त उत्साह के साथ सब कार्य्यों को समाप्त किया। मेरा हृदय दाम्पत्य सुख की मधुर कल्पना से प्रफुल्लित होने लगा। शनैः शनै वह शुभ मुहुर्त्त भी आ पहुँचा जिस दिन मेरा पाणिग्रहण होने वाला था मेरे हृदय में तरह-तरह की उमंगे तरंगित हो रही थी, पर हाय! जब मैंने पति जी का मुख अवलोकन किया तब एक दम हताश हो गयी। उनका वह बाल्यरूप देख कर मेरी सारी आशाओं पर पानी फिर गया। कहाँ मैं योवन के बोझ से लदी और कहाँ वे आठ साल के अबोध दूधमुँहे! पुरोहित पर मुझे अत्यन्त क्रोध आया, जी चाहा कि उसे कच्चा ही चबा जाऊँ, पर मैं विवश थी।

मेरा विवाह हो गया। मैं ससुराल गयी, पर हृदय उमंग शून्य था। उसमे नैराश्य अट्टहास कर रहा था। आशा विलख रही थी।

सोहाग की रात जीवन की सभी रात्रियो से सुखद तथा अमूल्य है। दो अपरिचित हृदय प्रेम-सूत्र के द्वारा परस्पर आबद्ध कर दिये जाते हैं। यह रात्रि अति सुन्दर है, बड़ी मधुर है। आज की घटित घटनाएँ जीवन पट पर सदा के लिये अंकित हो जाती है।

अर्धरात्रि हुई। किसी ने पति जी को जब वे घोर निद्रा मे निमग्न थे, लाकर मेरे घर मे सुला दिया। तत्पश्चात मैं उनके पास गयी और भोले मुख को निरख आँसू बहाने लगी।

मेरे संसर्ग से उनकी निद्रा भग हो गयी। वे अपने को इस वातावरण मे पा अत्यन्त व्याकुल हो चिल्ला पड़े और वहाँ से उठ कर द्वार की ओर दौड़े। मैने उन्हे लाख समझाया, पर वे एक न माने और चले ही गये।

धीरे-धीरे दो साल समाप्त हो गये। मेरी माँ का स्वर्गवास हो गया। वही मेरी एक मात्र आधार थी। उसीकी उपदेशपूर्ण बातो को श्रवण कर मैं अब तक धैर्य्य धारण किये हुए थी।

उसके मरते ही धैर्य्य-सेतु टूट गया और शोक-सरिता प्रबल वेग से प्रवाहित होने लगी। मेरे पति भी उसी साल शीतला के शिकार हो गये। इस दु:ख ने मेरे पूर्व शोक को और बढ़ा दिया। अब मैं विह्वल हो उठी।

मेरे ससुरजी अभी युवक ही थे। अवस्था अट्ठाइस उनतीस के समीप थी। वे वड़े रसिक तथा हँसमुख थे। सरलता के तो मानों वे सजीव मूर्ति ही थे। मेरी सुन्दरता तथा उठती हुई जवानी देख वे उन्मत्त हो गये। पहले तो मुझे उनके प्रति अत्यन्त घृणा उत्पन्न हुई, पर मैं बहुत दिनो तक अपने को सुरक्षित नही रख सकी। काम की प्रवल प्रेरणा से प्रेरित हो मैने अन्त में अपने को उनके चरणों पर डाल दिया।

अव मेरे दिन अत्यन्त आनंद से व्यतीत होने लगे। मेरे तनिक इच्छा करने पर संसार की सुंदर से सुंदर वस्तुयें वात की वात में उपस्थित हो जाती थी। रसिक ससुर जी मुझे अत्यंत प्यार करते तथा मुझे प्रसन्न रखने का सदा उद्योग किया करते थे। इसी प्रकार दो वर्ष वीत गये। ये दिवस मैंने कितने सुख से विताये इसका वर्णन करने में मेरी जिह्वा अस-मर्थ है। पर हाय! मै नही जानती थी कि सुख की ओट में मै अपनी आत्मा की हत्या कर रही हूँ। अपने को पतन के विस्तृत गर्भ में धीरे-धीरे प्रविष्ट कर रही हूँ।

ससुर जी के संसर्ग से मुझे गर्भ रह गया मैने एक दिन यह बात उनसे कही। इसे सुनते ही उनके चेहरे पर हवाइयाँ उड़ने लगी। कुछ देर तक तो उनके मुख से कोई शब्द नहीं निकला। पर तुरत ही उन्होंने अपने को सम्भाला। मैने शीघ्र ही देखा कि उनके मुख से विषाद की रेखाएँ हट गईं—वे पूर्व-वत हँसते हुए प्यार की बातें करने लगे।

कुछ दिनों के पश्चात् एक दिन वे मेरे पास आये और एक शीशी देकर उसकी दवा खाने के लिये कहा। मैंने वह शीशी लेकर अपने पास रख ली तथा समझ गई कि यह गर्भपात की औषधि है। यह कार्य्य मुझे अत्यन्त दूषित मालूम हुआ मैंने निश्चय किया कि चाहे जो हो मै इस दुष्कर्म को कभी सम्पन्न न करूँगी। ससुर जी मेरे इस निश्चय को सुन कर अत्यन्त क्रोधित हुए। वे बोले तो कुछ नहीं पर उनका मुख देखने से यह स्पष्ट विदित होता था, कि वे किसी गम्भीर समस्या को सुलझाने में निमग्न हैं। थोड़ी देर के बाद वे चले गये।

उनके जाने के पश्चात मै बिस्तरे पर जा गिरी और अपने भावी जीवन की कल्पना करने लगी। उस समय मेरा हृदय किसी अज्ञात आशंका से काँप उठा।

प्रात.काल हुआ। ससुर जी उसी दिन काशी यात्रा की तैयारी कर मेरे पास आये और मुझे अपने साथ चलने के लिए कहा। मैं सहर्ष सहमत हो गयी। मैं नही जानती थी कि यह यात्रा मुझे समाज तथा घर से निकालने वाली ही सिद्ध होगी। अन्यथा मैं घर से कभी पाँव ही बाहर न करती। मैंने प्रसन्नता पूर्वक सब तैयारी की। काशी पहुँचने पर वहाँ तीन दिन ससुर जी रहे। चौथे दिन वे मुझे वहीं छोड़ कर चले आये। जब मैंने उन्हें नहीं देखा तब खूब रोई-चिल्लाई, पर उस अज्ञात नगरी में सब व्यर्थ हुआ।

हाय! मैं अनाथिनी हो गयी। उस समय मेरे लिये कुछ

भी सहारा न रह गया। विवश होकर अन्त में मुझे वेश्या बनना पड़ा।

इस हिन्दू समाज में बड़े-बड़े धर्म के ठेकेदारों, सुधारकों, और मुखियों को छिप-छिप कर मुँह काला करते हुए मैंने देखा है। इस पतित समाज से मुझे घृणा हो गई है। मैं इस नारकीय समाज पर थूकती हूँ। हाय! हमारे ही समान सहस्रों अबलायें इस नारकीय समाज की कामाग्नि में नित्य आहुति पड़ती हैं। इतना कहते-कहते उसका गला भर आया। कुछ देर के लिये वह रुक गयी फिर एक ठंढी साँस लेकर बोली—मै इस नारकीय जीवन से मुक्त होना चाहती हूँ।

"अब मेरी इच्छा है कि अपना शेष जीवन एक आदर्श पत्नी की तरह व्यतीत करूँ यदि कोई युवक मुझे पत्नी रूप से स्वीकार करे तो मै प्रतिज्ञा करती हूँ कि यथा शक्ति उसके सन्मुख अपने को सच्चा प्रमाणित करने को उद्योग करूँगी"।

उसकी कहानी सुनकर मेरे हृदय में दया का उद्रेक हुआ। नेत्र अश्रुपूर्ण हो गये। मैंने अपने को समाज की बलिवेदी पर बलिदान करके उसका पुनरुद्धार करने का दृढ़ निश्चय किया। वह सहर्ष मुझे पतिरूप से स्वीकार करने में सहमत हो गयी। हम लोगों ने उसी समय आर्य्य समाज मंदिर की ओर प्रस्थान किया दोनों का विवाह ईश्वर के समक्ष अनेकों सत्पुरुषों तथा सुधारको की सहायता से सरलतापूर्वक सम्पन्न हो गया।

७
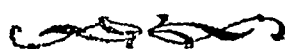
पूर्वाभास

सारा समाज काम की ज्वाला में जला जा रहा है। युवकों को छोड़ दो, ये साठ-साठ वर्ष के वेदन्त बूढ़े क्यों छैल-छबीले बन रहे हैं? इन्होंने नकली दाँतों से मुख को सुन्दर बना लिया है। खिजाब लगा-लगा कर बालों की सफेदी को हटा दिया है। मूँछ और दाढ़ियाँ खूब सफाचट कर अपने को लौंडों की तरह बना कर समाज की छाती पर नंगो की तरह उत्पात करना आरम्भ किया है?

समाज! तेरे बूढ़ों को—जो नवयुवकों और बालकों के पथ प्रदर्शक हैं, जो वास्तव में पूज्य हैं, तेरे मंत्री हैं—क्या हो गया है? ये क्यों छटपटा रहे हैं, आँखों में सुर्मा दिये तिरछी

चितवन से क्या ताक रहे हैं? इनकी चञ्चल दृष्टियाँ किधर जा रही हैं। समाज ! क्या तू जानता है ?

हा ! ननिक लज्जा कर। ये बूढ़े तेरे शत्रु हैं। काल के मुख के निकट पहुँच कर भी इनकी तृष्णा नही गयी। ये तेरी अवोध वालिकाओं पर कुदृष्टि डाल रहे हैं। क्या तू नहीं जानता ?

इन वूढ़ों की कामाग्नि किसके द्वारा शान्त होती है? कौन इनके सिरों पर मौर बँधवाता है? कौन गौरी और रोहिणी समान अवोध वालिकाओं को इन दुराचारियों की गोद में डालता है? कौन इस प्रकार देश की लाखों वालिकाओं के अमूल्य जीवन को बात-की-बात में नष्ट करवाता है? समाज ! तू उन दुराचारियो को जानता होगा ?

किस नारकीय नरपिशाच के द्वारा इस कुकृत्य की वृद्धि हुई? किसने कालग्रासों से संसर्ग करा वालिकाओं को विधवा वना कर उन्हें सताया? किसने समाज में व्यभिचार की वृद्धि करायी, किसने विधवाओं को वेश्या वनने के लिये बरबस वाध्य किया तथा किस नीच हत्यारे ने धर्म के नाम पर यह अनर्थ किया? समाज ! शायद तुझे मालूम न हो।

कालनेमि ! यह सब तेरी ही करामात है। तू ही इन काण्डों का रचयिता है। प्रत्यक्ष तू ही इन पापों का प्रचारक है। यदि तेरी स्वीकृति नहीं होती तो इन लम्पट वेदन्तों की क्या शक्ति थी जो किसी गौरी या रोहिणी पर हाथ लगाते अथवा बलात्कार करते हुए उनकी मूक कुर्बानी करते।

समाज ! तेरी आज्ञा के विरुद्ध कुछ भी नही हो सकता। संसार में कौन ऐसी शक्ति है जो तेरी बालिकाओं पर कुदृष्टि डाल सके, तेरी बहू बेटियों को अपवित्र दृष्टि से ताक सके अथवा उन पर बलात्कार और अत्याचार कर सके। कदापि नही। यदि तू रक्षक है तो संसार की सारी शक्तियाँ मिल कर भी उन्हें कलङ्कित नही कर सकती। यदि तू अपनी देवियों की रक्षा के लिए कटिबद्ध है, उनके सतीत्व के मूल्य को समझ कर तू मरने मिटने के लिये तैयार है तो कौन ऐसा वीर है जो उनकी ओर ताक दे, उन्हें लाञ्छन लगावे अथवा उन्हें व्यभिचार की सम्मति दे।

हीजड़ा समाज ! आज तू देवियों की रक्षा करने में सर्वथा असमर्थ हो गया। क्या तेरी आँखें फूट गईं ? देखता नहीं, दिन दहाड़े लूट मच रही है। हा ! तेरे देखते ही देखते, तेरे सामने ही, प्रत्यक्ष नेत्रों के सामने से युवतियाँ लूटी जा रही हैं, विधर्मी उनके संसर्ग से तेरे धर्म-शत्रुओं को उत्पन्न कर रहे हैं। सब से बड़ी बात तो यह है कि तुम्हारी ही गृहदेवियाँ आज बड़े-बड़े वेश्यालयों को सुशोभित कर रही हैं। नपुंसक समाज ! क्या यह देख कर भी तुझे साहस नहीं होता कि अपनी उन कुरीतियों को दूर करे जिनके कारण यह अनर्थ मच रहा है।

तेरे साठ-साठ वर्ष के वृद्ध विषयी बन रहे हैं। तू बड़े प्रेम से उनके चरणों पर गौरी या रोहिणी को भेंट चढ़ा देता है। वृद्ध, कामी वृद्ध अवस्था के पूर्व ही उस बालिका को नष्ट

कर देता है। बालिका युवती होते-होते पूर्ण व्यभिचारिणी बन जाती है।

तुम्हारी गौरी युवा हो चुकी है। काम उसे विह्वल बना रहा है। वह काम के प्रबल झोंके से पत्ते की तरह हिल रही है। तेरे वृद्ध मे वह शक्ति नही, बल नही, प्रभुत्व नही और पराक्रम नही, जिसके द्वारा उस कामान्ध तरुणी के दुर्भेज्य दुर्ग पर विजय प्राप्त करें। तुम्हारी गौरी अब क्या करे, कैसे इस काम के वेग को रोके, बूढ़ा तो निःशक्त हो चुका है। देख! तेरी आँखों के सामने ही वह पतित होती है। तू ही उसके पतन का कारण है। निःसन्देह, तू ही उसके साथ व्यभिचार करता है।

आगे चल। थोड़े ही दिनों में बूढ़ा रौरव में जाता है। तू मनमाना स्वतन्त्र होकर उस विधवा के साथ आनन्द उठाता है। उसे प्यारी नही, प्राणप्यारी कह कर रात दिन गले लगाता है। उसकी जूतियाँ सिर पर ढोने में अपना भाग्य समझता है, परन्तु यह क्या? अब तू क्यों विमुख हो गया?

विधवा गर्भवती हो गयी। हाय! हाय! कही की न रही। न घर की न घाट की। पापी समाज! तेरे पापो का क्या प्रायश्चित्त होगा? रौरव भी तुझे देख कर डरेगा। समाज! क्या इसीको समाज कहते है?
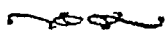
नारकीय लीला

सुन्दरी के पिता शम्भू द्विवेदी एक प्रतिष्ठित पुरुष थे। गाँव में उनकी बड़ी धाक थी, सभी उनका आदर करते थे। गाँव का कोई भी कार्य बिना पण्डित जी की राय के सम्पन्न नही होता था। सुन्दरी उनकी एक मात्र सन्तान थी। वे उसे अत्यन्त प्यार करते थे। वह जब कभी बाहर से आते, तब उसके लिये मिठाइयाँ अवश्य ले आते तथा उसकी सुन्दरता की प्रशसा करते हुए कहते—"पुत्री! तू मेरा उद्धार कर देगी।" छः सात साल की बालिका इस बात का अर्थ न समझ हँस देती तथा अपना मुख पिता के अङ्क में छिपा लेती।

दो वर्ष बीत गये। पण्डित जी सुन्दरी के लिये वर की खोज में संलग्न हो गये। माता सुन्दरी से कहती—"पुत्री मैं तेरे लिये फूल सा वर लाऊँगी।"

सुन्दरी पूछती—"माँ! वर कैसा होता है?"

माँ उत्तर देती—"बड़ा सुंदर, उसे पाकर तू अत्यन्त प्रसन्न होगी। जब तेरा विवाह होगा तब तुझे मिठाइयाँ खाने को मिलेंगी।"

सुन्दरी प्रसन्नता से नाच उठती। वह कहती—"तब माँ! तुम मेरा विवाह शीघ्र क्यों नही करती।"

माँ हँस कर कहती—"हाँ बेटी! अब तेरा विवाह बहुत शीघ्र करूँगी। तेरे पिता वर की खोज में गये है, वे अब आते ही होंगे।"

सुन्दरी का हृदय मिठाई पाने की आशा से लहलहा उठा। उसने अपनी सखियों से कहा—"सुनती हो लोगों! अब मेरा विवाह होगा, मुझे फूल सा वर मिलेगा तथा खाने को मिठाइयाँ मिलेंगी।"

सभी एक स्वर से बोल उठी—"मुझे भी दोगी न सुन्दरी!"

उसने उत्तर दिया—"अवश्य।"

फिर वे सब खेल में लीन हो गयी।

शम्भू जी आज आठ दिनों के उपरान्त घर लौटे हैं। सुन्दरी की माँ नित्य द्वार पर खड़ी होकर उनके आने की बाट जोहती थी। आज उसकी वह आशा फलीभूत हुई। पण्डितजी अपनी

चेष्टा में सफल हुए थे। वर एक पास ही के गाँव का धनीमानी तथा प्रतिष्ठित व्यक्ति था। सुन्दरी की माँ फूली न समायी। उसे पूर्ण विश्वास था कि उसकी पुत्री को किसी बात का दु:ख न होगा।

आज सुन्दरी के विवाह का दिन है। वह तरह-तरह के आभूषणों द्वारा सुसज्जित की जाती है। पण्डितजी विवाह की तैयारी में जी-जान से लगे हुए हैं। नियत समय आ पहुँचा। बारात बड़ी सजधज के साथ आयी। पण्डितजी अगवानी के लिये पहले ही से प्रस्तुत थे। बारात को यथा-स्थान ठहरा कर वे घर आये।

पर हाय! बारात द्वार पर आने के समय जब सुन्दरी की माँ ने वर का मुख देखा, तब उसे काठ मार गया। उसकी चिर सञ्चित आशालता पर नैराश्य का तुषार पड़ गया। सफेद बालों में खिजाब तथा पीली आँखों में सुरमा लगाये चेहरे पर झुर्रियाँ पड़ी हुई और पोले मुख में नकली दाँत जमाये हुए थे। यही वर महाशय की सीधी सादी हुलिया थी। जिसने उन्हें देखा, उसीने सुन्दरी के भाग्य पर टुक आँसू बहा शम्भू जी को भर पेट कोसा; पर विचारी सुन्दरी यह सब कुछ भी न समझ सकी। माँ को उदास देख वह बड़ी दु:खित हुई। उसने अपनी समझ में माँ को प्रसन्न करने के लिये पूछा—
"माँ मेरा फूल सा वर मुझे कब मिलेगा?"

उसकी बात सुन कर माँ अत्यन्त व्याकुल हो बोली—

"हाय बेटी ! मैं नही जाननी थी कि तेरा निष्ठुर पिता धन के लोभ में पड़ तेरा बलिदान करेगा। यदि यह मुझे पहले मालूम होता तो बचपन में ही तेरा अन्त कर देती, फिर मुझे यह दिन तो न देखना पड़ता।'

माँ की बातें सुन कर सुन्दरी किंकर्तव्य विमूढ़ सी हो गयी। अपनी चेष्टा में असफल होने से वह कुछ उदास दिखायी पड़ने लगी। माँ का हृदय दुःख तथा शोक से विदीर्ण हो रहा था। वात्सल्य उसमें पड़ा सिसक रहा था। पर हाय ! वह निःसहाय थी। येन केन प्रकारेण विवाह का शुभ मुहूर्त्त आ पहुँचा। पंडित जी ने प्रसन्न मन से अपनी आठ साल की अबोध बालिका का विवाह एक साठवर्षीय खूसट के साथ कर दिया। इसमें उन्हें नौ सो रुपये की प्राप्ति हुई। वर पक्ष वालों ने आठ सौ पहले ही दे दिये थे। केवल एक सौ रुपये विवाह के समय देने की प्रतिज्ञा थी। वे अपनी प्रतिज्ञा पूरी न कर सके, इस पर पंडितजी उबल पड़े और कन्या की बिदाई के समय तन गये। उन्होंने स्पष्ट कह दिया कि जब तक शेष रुपये नही मिल जायँगे बिदाई नही हो सकती। उन लोगों ने लाख अपनी विवशता प्रकट की, पर वे एक न माने। अन्त में सौ रुपये के बदले दो सौ का हैन्डनोट लिखाकर किसी तरह भेजने में सहमत हुए।

सुन्दरी की बिदाई हो गयी। माँ का भग्न हृदय इस दारुण दुःख को न सह सका। वह शोक से विह्वल हो विस्तरे पर गिर

पड़ी और ऐसी गिरी की फिर कभी न उठी। उसके कथनानुसार सुन्दरी को फूल सा वर मिला या न मिला पर पंडित जी का उद्धार तो अवश्य हो गया।

× × × ×

सुन्दरी की माँ को मरे दो साल बीत गये। शम्भूजी ने पुनः अपना विवाह किया। उनके पूर्व कृत कार्य्य ही से गॉव में सनसनी फैल गयी थी। इस कार्य्य ने तो और भी जुलम ढा दिया। सभी को उनके प्रति अश्रद्धा हो गयी। उनकी नयी बहू का नाम था प्रभा। वह बड़ी ही सुंदरी थी, उसकी चंचल भृकुटी तथा मदभरी आँखों को देख कर पंडित जी उन्मत्त हो जाते थे। उसने आते ही इन पर शाशन करना प्रारम्भ किया। वे भी उसकी आज्ञा पालन करने में अपना सौभाग्य समझने लगे।

चार वर्ष वात की वात में समाप्त हो गये। सुन्दरी पर दैव का प्रकोप हुआ। उसका सौभाग्यसूर्य अस्त हो गया। भरी जवानी में वह विधवा हो गयी। पति के मरते ही ससुराल वालों ने उसे अनेकों प्रकार का कष्ट देना प्रारम्भ किया। उसे पशु की तरह प्रातःकाल से सन्ध्या तक घर का कार्य्य करना पड़ता। इसके वीच यदि वह एक मिनट के लिये भी बैठ जाती तो उसे तरह-तरह के अपशब्द तथा नैहर का ताना सुनना पड़ता। वेचारी इन सब कष्टों को कव तक सहन करती। अन्त में उसने पिता के पास एक पत्र लिख कर अपने सभी कष्टों का

उन्हें यथार्थ बोध करा दिया। उन्होंने भी लोक लज्जा के डर से उसे घर बुला लिया।

सुन्दरी ने छः वर्षों के पश्चात् घर में पाँव रखा। पर हाय ! इस उजड़े उपवन में अब क्या शेष था। घर की शान्ति तथा सुख सामग्रियाँ उसकी माँ के ही साथ-साथ यहाँ से बिदा हो चुकी थीं। अतीत की सुखद स्मृतियाँ उसकी आँखों में नाच उठी। वह बिलख-बिलख कर विलाप करने लगी। कुछ देर के उपरान्त जब उसका हृदय स्थिर हुआ, तब वह अपनी नयी माँ के समीप गई और उनके चरण छुए। वह घृणा से मुँह फेर कर सूखी हँसी हँसने लगी। सुन्दरी के हृदय को ठेस लगी। उसे अपने पर बड़ा क्रोध आया। वह वहाँ से उठ खड़ी हुई तथा एकान्त में जा बिलख कर कहने लगी—"हा, माँ ! तुम कहाँ हो। अपनी सुन्दरी की दशा को तनिक देखो। मेरा संसार लुट गया। मै दारुण दुःख की ज्वाला में भस्म हुई जा रही हूँ। आओ, माँ ! बचाओ।" उसका विलाप देख पास पड़ोस वाले सिहर उठे। छोटे-छोटे बच्चे तक रोने लगे; परन्तु प्रभा का पाषाण हृदय तनिक भी विचलित न हुआ। वह रोते-रोते निद्रा देवी की गोद में जा पड़ी, वहाँ उसे कुछ शान्ति मिली।

निद्रे ! तू धन्य है। तेरे सदृश्य दुखियों पर दया करने वाला और कौन है। चाहे कैसा ही व्यथित क्यों न हो ! पर जब तू करुणा कर उसे अपने अङ्क में छिपा लेती है, तब वह कुछ देर के लिये अपने सारे कष्टों को भूल जाता है।

जब उसकी निद्रा खुली, रात्रि का प्रथम पहर बीत चुका था। चन्द्रदेव गगनांगण मे विद्यमान थे। उनकी चंचल किरणें पृथ्वी पर थिरक रही थीं। वह उठ कर पिता के पास चली गयी। पिता उसे अपने पास बिठा कर प्यार-युक्त शब्दों से सान्त्वना देने लगे। उसके हृदय की आग फिर एक बार धधक उठी। वह पिता के अङ्क में मुँह छिपा बिलख-बिलख कर रोने लगी। पिता का हृदय द्रवीभूत हो उठा। उन्होंने किसी प्रकार समझा बुझा कर उसे चुप कराया।

सुन्दरी ने कुछ दिन शान्तिपूर्वक व्यतीत किये, पर फिर उसे सौतेली माँ की हृदयस्पर्शी बातों का आलिङ्गन करना पड़ा। किसी कार्य्य में तनिक भी चूक होने पर वह उग्र रूप धारण कर लेती, पर सुन्दरी कभी भी उनकी बातों का उत्तर नहीं देती थी। इससे उसका क्रोध शीघ्र ही ठंढा पड़ जाता था।

चंद्रकांत पंडित जी के घर के बहुत समीप रहता था। गाँव के नाते वह उनका भतीजा लगता था। वह सदा उसके घर आया करता था। प्रभा उससे घंटों बातें किया करती थी। धीरे-धीरे प्रभा उसके सुगठित शरीर तथा मधुर सम्भाषण पर आसक्त हो गयी, उसने अपने को उसके चरणों पर डाल दिया। फिर तो उनके दिन बड़े आनन्द से कटने लगे।

सुन्दरी उन दोनो के पथ में रोग थी। इसे हटाने की वे जी-जान से चेष्टा कर रहे थे, पर अपने कुकर्तव्य में किसी प्रकार

भी कृतकार्य नहीं होते थे। प्रभा उसे तरह-तरह का कष्ट देने लगी तथा उसकी चुगली पण्डितजी से करने लगी।

एक दिन प्रभा ने सुन्दरी से बर्तन मॉजने को कहा। सुन्दरी प्रातः काल से ही काम करते-करते बिलकुल थक गयी थी। उसने उत्तर दिया कि थोड़ी देर के पश्चात् वह मॉज देगी। बस, इतने ही में वह उबल पड़ी और निर्दयता से सुन्दरी को मारने लगी। सुन्दरी अब तक धैर्य धारण किये हुए थी, पर अब उससे नहीं रहा गया। उसने भी दो एक गाली उसे सुना दी। फिर क्या था, प्रभा की शेष क्रोधाग्नि भी भड़क उठी। वह कोपभवन का स्वॉग बना कर एक कोने मे जा लेटी। जब पण्डित जी घर आये, तब नमक मिर्च लगा कर सुन्दरी की कुल बातें कह दी। पण्डितजी क्रोध से पागल हो उठे। उन्होंने विना विचारे सुन्दरी को मार कर घर से निकाल दिया। पितृ गृह में अब उसके लिये स्थान नहीं था। उसे अपने भावी जीवन की चिन्ता हुई। पिता के इस निष्ठुर व्यवहार से उसका हृदय टूक टूक हो गया। वह एक वृक्ष के नीचे बैठ कर ऑसू बहाने लगी। प्रभा की इच्छा पूरी हुई तथा उसके सुख का मार्ग खुल गया। अब चंद्र तथा प्रभा का मिलन यथासमय निर्विघ्न होने लगा।

"प्रिये!"

"प्रियतम!"

"इस तरह लुक छिप कर कब तक चलेगा?"

"तो मुझे क्या करने को कहते हो ?"

"वही कार्य, जिससे हम लोगों का पथ निष्कण्टक हो तथा स्वतंत्रता से प्रणय लालसा पूरी कर सकें।"

"मै तुम्हारे लिये सब कुछ करने को तैयार हूँ।"

"तब क्यों न हमलोग किसी सुदूर प्रदेश मे चल चलें।"

"अच्छी बात है, यही सही।"

अर्ध रात्रि का समय था। सारा संसार निद्रा की गोद में पड़ा सो रहा था। भयानक अन्धकार छाया हुआ था। सर्वाङ्ग शान्ति विराजमान थी। एकाएक उस शान्ति को भङ्ग करती हुई एक सीटी बज उठी। शम्भूजी के द्वार का किवाड़ खुला और प्रभा अपने को काले वस्त्रों में छिपाये हुए घर से बाहर निकल पड़ी।

चन्द्र पहले ही से उसकी प्रतीक्षा कर रहा था। उसे देख उसकी हृदय कञ्ज कलिका खिल गई फिर दोनों ने अपने निर्दिष्ट स्थान की यात्रा की। शम्भूजी घोर निद्रा में निमग्न थे। उन्हें इस कार्य का कुछ भी ज्ञान नही हुआ।

प्रात काल हुआ। प्राची प्राङ्गण में बाल सूर्य्य की अरुण रश्मियाँ थिरक उठी। शम्भूजी ने उठ कर प्रभा को पुकारा, पर प्रभा कहाँ ? वह तो अपने प्रियतम के साथ न जाने कहाँ आनंद मना रही थी। उन्होंने सारा मकान ढूँढ़ मारा, पर प्रभा का कही भी पता न चला। अन्त में हताश होकर वे बिस्तरे पर गिर पड़े। एकाएक उनकी दृष्टि जहाँ प्रभा अपने आभूषणों की

पेटी रखती थी जा पड़ी। पेटी को यथास्थान न देख उनका माथा ठनका, फिर उन्होंने रुपयों का बक्स खोला, पर हाय ! उसमें एक कौड़ी भी न थी। बात-की-बात में यह समाचार सारे गाँव में फैल गया जो यह सुनता वही हँस देता था। पंडित जी की दशा पर किसी को दया न आयी। किसी ने भी उनके प्रति सहानुभूति नही दिखलायी। पंडितजी का हृदय इस शोक को सहन नही कर सका। वे अधीर हो उठे। प्रभा ने उन्हें किसी के सामने मुँह दिखलाने के योग्य भी नही रक्खा। उन्होंने इस दारुण दुःख से प्रेरित होकर आत्महत्या कर ली। धत्तेरे ! नारकीय समाज के कुकृत्य की।

सुंदरी जब वृक्ष के नीचे बैठी हुई आँसू बहा रही थी। उसी समय एक सज्जन पुरुष उस पथ से जा रहे थे। उन्हें इसकी दशा पर दया आयी। उसके समीप आकर उन्होंने प्यार-युक्त शब्दों से रोने का कारण पूछा। उसने रोते-रोते अपनी कहानी आद्योपांत उन्हें सुना दी। उसकी दुःख गाथा सुन उनका करुण हृदय द्रवीभूत हो उठा। उन्होने यथाशक्ति उसे सहायता देने का वचन दिया, वे दिल्ली के रहने वाले थे। सुन्दरी उनके साथ दिल्ली गयी।

उनकी स्त्री बड़ी दयालु थी। सुन्दरी की कहानी सुन कर उन्होंने उसपर असीम कृपा की। उसे घर का कोई कार्य्य नही करना पड़ता। वे बड़े धनी थे। नाम था उनका सुधाकर। कमला की उनपर असीम कृपा थी। सुंदरी के दिन बड़े शांति-

पूर्वक व्यतीत होने लगे वह सदा उनके बच्चों की सेवा में लगी रहती थी। उनके साथ रहने में उसे अत्यन्त आनन्द मिलता था।

प्रभा को घर छोड़े चार वर्ष बीत गये। वह अपने साथ दश हजार की सम्पत्ति लायी थी। उन दोनों ने दिल्ली की यात्रा की। चंद्र उसके समान सुंदरी तथा इतने बड़े धन समूह को पाकर फूला न समाया, पर जैसे-जैसे दिन व्यतीत होने लगे चंद्र पतन के गह्वर में प्रविष्ट होता गया। वह मदिरा पान का पूर्ण गुलाम बन गया। मनुष्य का स्वभाव है कि वह नवीन वस्तुओं का उपभोग करना चाहता है। एक से उसे तृप्ति नहीं होती। चंद्र की भी यही दशा हुई। उसका स्नेह प्रभा के प्रति कम होने लगा। यदि वह उसे मदिरा पान से रोकती तो वह बड़ा उग्र रूप धारण कर लेता और उसे बुरी-बुरी गालियाँ सुनाने लगता। वह चुप हो जाती। धीरे-धीरे वह वेश्यागामी भी बन गया। अब उसने प्रभा को अनेकों प्रकार का कष्ट देना प्रारम्भ किया। यदि वह रुपया देने में जरा भी आनाकानी करती तो वह उसे बुरी तरह पीटता। प्रभा को अपने कृत्य के लिये पश्चात्ताप होने लगा, पर अब क्या!

एक दिन अर्धरात्रि के समय चंद्र मदिरा के नशा में चूर घर आया। प्रभा उसे समझाने लगी। बस क्रोध में आ वह उसे मारने लगा और तरह-तरह का अपशब्द कहने लगा। प्रभा ने भी क्रोध में आ पास रखी हुई कटार उठा कर उन्ही पर चला

दी। कटार ठीक जाकर हृदय पर लगी और चंद्र एक आह खींच कर पृथ्वी पर गिर पड़ा। प्रभा दौड़ती हुई उसके पास गयी, पर सब समाप्त हो चुका था। वह दुःख के आवेग से पागल हो गयी।

× × × ×

सन्ध्या का सुहावना समय था। दिनकर पश्चिम दिशा की ओर सवेग अग्रसर हो रहे थे। सुन्दरी सुधाकर बाबू के लड़कों को साथ लेकर मोटर पर हवा खाने निकली थी। एकाएक उसके मोटर के नीचे एक स्त्री आ गयी। ड्राइवर ने उसे बचाने की लाख चेष्टा की पर कृतकार्य्य न हो सका। वह प्रभा थी। सुन्दरी उसे लेकर घर गयी। डाक्टर के समुचित उपचार करने से वह कुछ देर के बाद सचेत हो गयी, पर उसने स्पष्ट कह दिया कि उसका बचना असम्भव है। जब वह होश मे आयी तब सुन्दरी ने उससे पूछा कि वह यहाँ क्योंकर आयी? उसने सब बातें स्पष्ट कह दिया तथा अपने कुकृत्य के लिये उससे क्षमा याचना करने लगी। सुन्दरी की आँखों से अविरल आँसुओं की धारा बह निकली उसने कहा "माँ इसमे तुम्हारा कुछ भी दोष नही, यह मेरे पूर्व जन्म के पापों का फल है।" माँ का हृदय हलका हो गया और उसने शांतिपूर्वक पुत्री की गोद में प्राण त्याग किया।
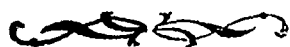
पूर्वाभास

अत्याचारी समाज ! सर्वत्र व्यभिचार की अग्नि से भस्मीभूत हो रहा है। समाज का कोना-कोना उसकी प्रलयंकर लपटों से झुलस रहा है। जिधर दृष्टि डालो उधर ही इस अग्नि का ताण्डव दृष्टिगोचर हुए बिना नही रहता। सर्वत्र धॉय-धॉय करते हुए अट्टहास कर रहा है।

व्यभिचार पाप है, अनर्थ है और अमानुषिक कर्म है। समाज यह जानता है। व्यभिचार अधर्म है, अत्यचार है और अपवित्र जीवन का कारण है। व्यभिचार दुर्गुणों का अर्क है, उन्नति का बाधक है तथा अधःपतन का कारण है। फिर भी समाज, नारकीय समाज उसे प्रेमपूर्वक अपना रहा है। संसार के सामने

आलिङ्गन कर रहा है। नही, नहीं, इतना ही नही; उस व्यभिचार को अपने सिर पर बिठा रहा है।

धर्म शास्त्रों में लिखा है—व्यभिचार मत करना। वेदों ने आज्ञा दी है—मानवो ! अपने कल्याण के लिये, नैतिक और शारीरिक बल की उन्नति के लिये, अपने को वास्तव में मनुष्य बनाने के लिये, कभी भी व्यभिचार न करो। व्यभिचार ही दुःखों का कारण है। इसीसे धन और धर्म का नाश होता है।

इसकी क्षत्रछाया में पहुँचते ही मानवीय गुण जाते रहते हैं। इसके धारण करते ही मनुष्य, मनुष्य नही रह जाता। वह प्रत्यक्ष नारकीय और कुकर्मी हो जाता है। उसकी वृत्तियाँ विपर्यय पथ का अनुगमन करने लग जाती है। उसका शान्त अन्तःकरण क्षुब्ध हो जाता है, मन चंचल और उद्दण्ड बन जाता है। बुद्धि भ्रष्ट हो जाती है। सर्वत्र अहंकार अपना अटल साम्राज्य स्थापित कर लेता है। हा ! देखते-ही-देखते मनुष्य प्रत्यक्ष राक्षस के समान अविचारी और अत्याचारी बन जाता है।

व्यभिचार ने संसार का नाश किया। बड़े-बड़े चक्रवर्ती पददलित हुए तथा एक नहीं सहस्रों तपोनिष्ठ वनवासियों का पवित्र जीवन भ्रष्ट हुए बिना नही रहा। बड़े-बड़े योगीन्द्र मेनकादि वेश्याओं के क्रीतदास बन अपना सर्वस्व गवाँ बैठे तथा लाखों नैष्ठिक व्रतधारी अपने को इसके संसर्ग के द्वारा बात-की-बात में मिटा चुके। समाज ! क्या तू अतीत की उन पुरानी बातों को नही जानता।

तेरे देवताओं का राजा इन्द्र इसी व्यभिचार के कारण पद दलित हुआ, उसे राज सिंहासन छोड़ कर अज्ञात स्थान में भागना पड़ा, गौतम का शाप अंगीकार करना पड़ा तथा एक सदाचारी मनुष्य के सन्मुख काँप जाना पड़ा। इसी व्यभिचार के कारण तेरे विष्णु को वृन्दा के सन्मुख झुकना पड़ा, चन्द्रमा को रोना पड़ा तथा ब्रह्मा को कलंकित होना पड़ा।

क्या तू रावण और वेणु को नहीं जानता? सहस्राबाहु की बातें भूल गया? बालि की मृत्यु का कारण, जरासन्ध के अन्त का रहस्य तथा जयद्रथ और दुर्योधन के नाश का बीज क्या था? प्रत्यक्ष रूप में मानना पड़ेगा कि इतने बड़े-बड़े वीर, जिनके प्रताप से दिशायें विचलित हो उठती थी, मेरु थर्रा जाता था—आकाश काँप उठता था तथा पृथ्वी दहल जाती थी—व्यभिचार के कारण कुत्ते की मौत मरे। रावण को कौन नहीं जानता? बालि की वीरता किससे छिपी है? राम जैसे धुरन्धर वीर को भी उससे सन्मुख लड़ने में भय था। अपने बाहुबल से कैलाश को उठा लेने वाले दशग्रीव को भी जिसने कारागार में बरबस पकड़ कर बन्द कर रखा था, ऐसा संसार का अद्वितीय वीर भी व्यभिचार के द्वारा वनपशुओं के समान बात-की-बात में मार डाला गया। . . . .

छत्रधारी दुर्योधन जिसका प्रतापभानु कभी मध्य अम्बर में तप रहा था। भीष्म, द्रोण और दुर्विजय वीर कर्ण जिसके संरक्षक थे। वह स्वयं सौ भाइयों के साथ अवनि और गगन

को एक करने वाला था। क्या हुआ? सदाचारी भीष्म के उपदेशों की अवहेलना करने पर वह क्षत्रधारी तथा उसके एक-एक भाई महावली भीम की गदा से चूर-चूर कर दिये गये। आचारवान पाण्डवों ने एक भी दुराचारी को नहीं छोड़ा। व्यभिचारियों का बच्चा-बच्चा उस महासमर की अग्नि में भस्म हो गया।

समाज! देवताओं के पतन का कारण देख! व्यभिचार और बिलासिता ने ही उन्हें दानवों से पराजय दिलाथा। शुक्र के शिष्यों ने ब्रह्मचर्य के बल से ही इन्द्रलोक पर अधिकार किया था। अपने आचार के बल से ही ब्रह्मा, बिष्णु और शङ्कर को दण्ड दिया, सन्मुख समर में उन्हें परास्त किया और एक नहीं लाखों देवताओं को वर्षों पर्वत की कन्दराओं में बन्द किया था।

समाज! आँखें खोल और अपने भीतर फैले हुए इस व्य-भिचार को देख, जिसे धारण कर तेरी आत्माएँ अपने को काल के मुख में झोंक रही हैं, अपने को जीवित ही दग्ध कर रही हैं तथा आगे बढ़ कर तेरी उस लम्बी नाक को—जिसे तेरे पूर्वजो ने सदाचार के द्वारा बढ़ाया था—इस व्यभिचार रूपी तेज छूरी से जड़ से ही काट रही है। कुलांगारो की छूरियों को शीघ्र फेंक अथवा वज्र लौह के ढकने से अपनी लम्बी नाक को छिपा ले अन्यथा तेरी नाक निश्चय ही पृथ्वी पर लोटती दिख-लाई पड़ेगी।

व्यभिचार की पराकाष्ठा

"सुनते हो जी !"

"क्या है ?"

"अब मै इस गृह में एक मिनट भी नही रह सकती ।"

"आखिर इस क्रोध का कारण ?"

"कारण—कारण पूछते तुम्हें लज्जा नही आती ? जिसकी स्त्री का इस प्रकार अनादर हो, बात-की-बात में मायके का ताना दिया जाता हो, उसे चुल्लू भर पानी मे डूब मरना चाहिए ।"

"प्रिये ! वे हमारे बड़े हैं, उनकी बातों को सहन करना हमारा परम धर्म है । तुम इन व्यर्थ की बातों को अपने हृदय में स्थान न दो ।"

"वाह! क्या कहना है, वे बड़े हैं तो होते रहें। मैं उनकी विष भरी बातों को सहन नही कर सकती।"

"यह तुम्हारी भूल है, वे तुम्हें प्राणों से बढ़कर प्यार करते हैं।"

"मैं तुम्हारी इन चिकनी चुपड़ी बातों में नही आने की या तो तुम इस घर का त्याग करो या मुझे मेरे मायके भेज दो।"

"देखो प्रिये! यह उन्ही लोगों की दया का फल है कि मैं आज कुछ उपार्जन करता हूँ। यदि वे मुझे उस निःसहाय अवस्था में त्याग देते तो आज मेरे अस्तित्व का भी पता न चलता। ऐसे देवतुल्य भाई का त्याग, कितने लज्जा की बात है।"

"यदि तुम्हारे भाई तुमको मुझसे अधिक प्रिय है तो तुम उन्हीके साथ रहो। मैं अपने पिता के घर चली जाऊँगी। मेरे लिये तुम कुछ भी चिन्ता न करो।"

अन्त में प्रभाकर बाबू को किरण की बातें माननी ही पड़ी।

सुरेन और प्रभाकर दोनों एक लाद के भाई थे। प्रभाकर जब आठ वर्ष का अज्ञान बालक था, उसी समय पिता का देहान्त हो गया था। माँ पहले ही संसार त्याग कर चुकी थी। सुरेन ने ही उसे पाला पोसा था। उन्हें कोई पुत्र नही था। वे प्रभाकर को ही अपना पुत्र समझ उसकी उन्नति के लिये जी-जान से चेष्टा करने लगे। उनकी स्त्री बड़ी सुहृदय, सुशीला तथा सदाचारिणी थी। वह भी प्रभाकर को अत्यन्त प्यार करती और उसे सुखी करने की चेष्टा करती थी। प्रभाकर भी उनकी आज्ञा का कभी उल्लङ्घन नही करता था।

जब प्रभाकर विवाह योग्य हुआ तब सुरेन ने उसकी शादी एक उच्च कुल में बड़ी धूमधाम के साथ कर दिया। उसकी स्त्री अनिन्द्य सुन्दरी थी, नाम था उसका किरण। उसके मुख पर अपूर्व प्रभा थी। विधि ने अपना सारा कला-कौशल उसीकी रचना में स्पष्ट कर दिया था। पर उसका हृदय "विषरस भरा कनक घट जैसे" की कहावत को चरितार्थ करता था।

समय की गति बड़ी विचित्र है। बड़े-बड़े ऋषि मुनि भी इसके प्रवाह का पता न लगा सके। वही प्रभाकर जिसके उन्नति की कोई भी आशा न थी, भ्रातृ-स्नेह के अतुल प्रताप से वकालत पास कर अपने भाग्य के उन्नति की चरम सीमा पर पहुँच गया। कमला ने उस पर असीम कृपा की। राजश्री उसके चरणों पर खेलने लगी। उसकी वकालत चल निकली। वह अपने भाई की उस कृपा को, जो उन्होंने इसके जीवन के प्रथम चरण में की थी, न भूले। वे जितना उपार्जन करते, सन्ध्या समय उनके श्रीचरणों में धर देते। वे गद्गद हो जाते तथा ऐसा सुशील एवं सुहृदय भाई पाने के लिये अपने भाग्य की सराहना करते।

परन्तु ये सब बातें किरण को फूटी आँखों भी नहीं सुहाती थीं। उसकी इच्छा थी कि प्रभाकर जो कुछ भी कमा कर लावे वह उसे ही दे, पर वे बड़े ही भ्रातृभक्त थे। किसी प्रकार भी उसकी बातों में न आते। इससे वह सदा अप्रसन्न रहा करती और नित्य कोई-न-कोई बहाना लेकर जेठानी से लड़ जाती थी।

जब किरण किसी प्रकार भी अपनी चेष्टा में सफल न हुई, तब उसने कूट नीति से काम लेना चाहा। एक दिन जैसे ही प्रभाकर कचहरी से आये वैसे ही वह उनसे उलझ पड़ी, पर जब वे किसी प्रकार उसकी बातों में न आये, तब उन्हें मायके जाने का भय दिखा भाई से अलग होने की स्वीकृति ले ली।

(हाय रे नारि जाति! तू जो न करे वही थोड़ा है। तेरे लिये संसार में कोई भी कार्य्य असम्भव नही। तेरे प्रकोप की भीषण ज्वाला में पड़ कर रावण जैसे योद्धा और दुर्योधन जैसे पराक्रमी बात-की-बात में भस्म-विलीन हो गये। तेरी शक्ति अतुलित है, तेरा पराक्रम अद्भुत है, तेरे रूप के जाल में फँस कर कोई भी जीता न बचा।)

प्रातःकाल का समय था। दिशाएँ लाल हो रही थीं, पक्षियों के कलरव से वायुमंडल गुञ्जरित हो रहा था। हलवाहे अपने कंधों पर हलों को लिये तथा बैलों को आगे किये खेतों की ओर जा रहे थे। सुरेन बाबू अपने कमरे में बैठे हुक्का गुड़गुड़ा रहे थे, उसी समय प्रभाकर उनके पास आये। सुरेन ने उन्हें प्यार के साथ बिठाया तथा इतने सवेरे आने का कारण पूछा। प्रभाकर ने कहा—"भाई जी! आज तक मै आपको पिता तुल्य समझता रहा और आप भी मुझे पुत्रवत् प्यार करते थे। आपके ऋण से मै उऋण कदापि नही हो सकता। पर कुछ विशेष कारणों से अब मै आपसे पृथक् होना चाहता हूँ। आप कृपा कर मुझे इस धृष्टता के लिये क्षमा कीजिये।

सुरेन इस बात को सुन कर अत्यन्त आश्चर्यित हुए। उन्हें प्रभाकर से ऐसी बात सुनने की स्वप्न में भी आशा न थी। वे बोले—"क्या मैं भी उस कारण को जान सकता हूँ, जिसने तुम्हारे विचार को इतना कलुषित तथा हृदय को इतना अपवित्र बना दिया है ?"

"भ्राता जी। मुझे वह बात कहते अत्यन्त लज्जा मालूम होती है। मेरी स्त्री की यह इच्छा है। वह अब आप लोगों के साथ नही रहना चाहती।"

"इसका कारण ?"

"कारण है आप लोगों का बुरा व्यवहार, कटु वाक्य जो उसके प्रति उच्चारण करते हैं।"

इस बात को सुन कर सुरेन को काठ मार गया। उन्हें प्रभाकर से इस प्रकार के निष्ठुर व्यवहार की आशा न थी, पर वे करते क्या, अपने हृदय पर पत्थर रख अलग होने की आज्ञा दे दी। किरण को बहुत दिनों का वाञ्छित फल मिला।

प्रभाकर और सुरेन अलग हो गये। सारे मुहल्ले में यह बात अपयश की तरह फैल गयी, जो सुनता वही अवाक् रह जाता। सुरेन से पृथक् होते समय प्रभाकर का हृदय फटा जा रहा था। पर स्त्री के भय से वे अपनी आत्मा का खून कर रहे थे। नये घर में आकर किरण अत्यन्त प्रसन्न हुई। वह फूली न समाती थी, पर प्रभाकर का हृदय दुःख के वेग से अत्यन्त द्रवीभूत हो रहा था। उन्हें कही भी शान्ति नहीं मिलती थी।

कुछ दिनों के उपरान्त प्रभाकर के ससुरालवाले धीरे-धीरे उनके घर में पॉव फैलाने लगे। प्रथम उनका साला उन्हींके यहाँ आकर रहने लगा। तत्पश्चात् नित्य कोई-न-कोई ससुराल से उनके यहाँ आया ही रहता था। किरण प्रभाकर को अन्धा बना उनके पसीने की कमाई को धीरे-धीरे अपने घर भेजने लगी। वे देखकर भी अन्धे बने रहते थे। बिचारे करते क्या? यदि कुछ बोले तो स्त्री के क्रोध का भाजन बने और न बोले तो परिश्रम से उपार्जित धन का दुरुपयोग हो। वे बड़े धर्म संकट में पड़े। निश्चय और वासना में तुमुल संग्राम छिड़ गया। वासना ने निश्चय पर विजय पायी। उन्होंने किरण ही की इच्छा पर चलने में अपनी भलाई देखी।

काल का प्रवाह सदा एकसा नहीं रहता। यह पल-पल पर परिवर्तित होता रहता है। आज जो संसार की ऑखों में चढ़ा हुआ है, राजश्री जिसके चरणों पर खेला करती है, वही कल धूल में पड़ा हुआ, दर-दर की ठोकरें खाता दिखलायी देता है।

प्रभाकर भी कालचक्र के झपेटे में जा फँसे। एक मुवक्किल का कुछ कागज तथा रुपया उनके यहाँ से गुम हो गया। उसने उनपर धोखे का मुकद्दमा चलाया। वे बड़ी विपद में पड़ गये। उन्होंने मुकद्दमे की पैरवी के लिये किरण से रुपये माँगे। पर उसने कहा कि मेरे पास एक पैसा भी नही है। इसपर उन्होंने कहा कि अच्छा रुपये नही तो आभूषण तो हैं इन्हें ही बन्धक रखकर कुछ रुपयों का प्रबन्ध करे। परन्तु उसने आभूषण

उतारने से साफ इनकार कर दिया। प्रभाकर के हृदय को बड़ी चोट लगी। वे सोचने लगे—"हाय! जिसके लिये मैंने पिता स्वरूप भाई का त्याग किया, वही आज कुछ चाँदी के टुकड़ों के लिये मेरा अपमान कर रही है। मैं विपद् के कठोर गह्वर में पड़ा हुआ हूँ और यह पिशाचिनी मेरा ही उपार्जित धन मेरी रक्षा के लिये देना अस्वीकार करती है। हाय! भाई यह सब तुम्हारे प्रति किये गये दुष्कर्मों का फल है।"

उन्हें अपने पूर्व कृत पापों का सच्चा प्रायश्चित होने लगा। वे दिन याद आये जब दोनों भाई एक साथ भोजन तथा परस्पर प्रेमपूर्ण बातें करते थे। उन दिनों की स्मृति से उनके नेत्र अश्रु-पूरित हो गये। उन्होंने सोचा कि जाकर भाई से इस कार्य्य मे सहायता माँगें, पर लज्जा की अभेद्य दीवाल उनके सामने खड़ी हो गयी। अन्त में उन्होंने निश्चय किया कि चाहे उन्हें बन्दी बन कर कठिन कारागार के कठोर दुःख का भले ही भोग करना पड़े, पर वे उनके पास सहायता की याचना करने नही जायँगे।

प्रभाकर की तरफ से मुकद्दमें की पैरवी नही हुई, इसलिये मुद्दई को एकतरफा डिगरी मिली और उन्हें छ. महीने का कठिन कारावास का दण्ड हुआ।

सुरेन ने यह सुना, उनका भ्रातृप्रेम जो बहुत दिनों से सुषुप्तावस्था में पड़ा हुआ था, जाग पड़ा। उनकी आँखें छल-छला आयी। हृदय प्रेमपूर्ण हो गया। उन्होंने यह बात अपनी स्त्री से कहा। उसके पास रुपये नही थे, पर उसने अपने कुल

आभूषण दे निवेदन किया कि उसे बेच कर किसी प्रकार प्रभाकर की रक्षा करें। तत्पश्चात् सुरेन ने हाईकोर्ट में अपील की। विधि उनके अनुकूल थे। मुकद्दमे में उनकी जीत हुई और प्रभाकर बेदाग छूट गये। कारागार से निकल कर वे सीधे घर पहुँचे। दरवाजा खुला हुआ था। अन्दर आँगन से होकर वह कमरे के पास पहुँचे ही थे कि वहीं सहसा एक दृश्य देख सहम गये। उनके पैर के नीचे की पृथ्वी सरकने लगी। उन्होंने क्या देखा? 'किरण दुलीचन्द की गोद में बैठी अधर रस पान करा रही है।' ओह! अब वे वहाँ एक क्षण भी नहीं रुक सके। सीधे सुरेन के पास पहुँचे और उनके पैरों पर गिर कर बच्चों की तरह फूट फूट कर रोने लगे। सुरेन ने उन्हें उठा कर हृदय से लगा लिया और बहुत कुछ समझा बुझा कर शान्त किया। प्रभाकर अपने भाई की ही शरण में रहने लगे।

प्रभाकर ने सारी सम्पत्ति छोड़ दी। अब किरण गर्भवती है—दुलीचंद समाज के भय से आँखे चुरा रहा है। किरण कर्कशा से यह नहीं देखा गया। उसने दुलीचंद से बदला लिया। सवेरे दुलीचंद अपने कमरे में मरे पाये गये। परन्तु कोई अपराधी पकड़ा नहीं गया। हाँ, एक सप्ताह के अन्तर्गत यह बातें सुनाई पड़ने लगी कि किरण करीम बेहना के साथ बम्बई चली गयी है।

८
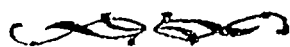
पूर्वाभास

भक्ति ही मुक्ति का मार्ग है। लौकिक और पारलौकिक उन्नति का साधन यही है। इसीकी साधना से हम स्वर्गीय सोपान के निकट पहुँच सकते है। नि.सन्देह जीवन का यही सद्‌पंथ है।

भक्ति की सरस धार ने ही भारत के अतीत को उज्ज्वल किया था। इसीको अपना कर ऋषियों ने अनन्त आत्मबल का परिचय दिया था। इसीकी चिर सेवा से साधारण नरों ने वे अलौकिक कृत्य कर दिखाये थे जिसे कभी देवता भी न कर सके थे। हमारे पूर्वज इसीको अपना कर विश्वविजयी तथा विश्वगुरु हुये थे। भारत का सुनहला अतीत इसीका प्रमाण

है। भक्तों ने क्या नहीं किया। एक बार असम्भव को भी सम्भव तथा अप्राप्य को भी प्राप्य कर लिया। आज भी उन भक्तों का नाम लेने में हम अपना गौरव समझते हैं।

ध्रुव, प्रह्लाद में किसका हाथ था, रघु और दिलीप में किसका विकास था, वशिष्ठ और नारद में किसका प्रकाश था, भीष्म और भीम में किसका बल था, चेदिराज, हनुमान और मोरध्वज में किसकी शक्ति थी? मानना पड़ेगा, उन महावीरों में भक्ति का सरस श्रोत बह रहा था, भक्ति के द्वारा ही उन्होंने ख्याति पायी। जनक, जाबालि जैमिनी याज्ञवल्क्यादि महापुरुषों को भक्ति ने ही महान किया। राम कृष्णादि भक्ति के ही अवतार थे। बुद्ध, शंकर, नानक, कबीर, तुलसी और दयानन्द उसीके रूप थे। इतना ही नहीं—ईसा, यरतुष्क और मुहम्मद में उसीकी आभा थी। निःसन्देह सेंटलुई, सीजर, नैपोलियन और वाशिंगटन उसीके प्रतिबिम्ब स्वरूप थे।

बन्धुओं, वह अतीत आर्यकाल भक्ति का ज्वलन्त उदाहरण है। जिधर दृष्टि डालो, उधर ही भक्ति का सरत श्रोत बहते हुए पाओगे। अतीत प्राङ्गण के जिस कोने में खोजना चाहोगे, तुम्हें भक्ति की सजीव मूर्ति जीती जागती दृष्टिगोचर होगी। ओह! भक्ति के उस अवर्णनीय रूप को देख कर विस्मित हुए बिना नहीं रहोगे। उस पुनीत रूप की आभा आश्चर्य्यजनक कृति करेगी। निःसन्देह उस पर दृष्टि डालते ही तुम्हारी अवस्था बदल जायेगी, तुम अपने को भूल जाओगे, तुम्हारी

दूषित वृत्तियाँ कुछ क्षण के लिये दूर हो जायेंगी। तुम्हारा कलुषित हृदय पवित्र अन्तरात्माओं के समान बोध होगा।

किन्तु यह स्थिति स्थायी नही रह सकती। तुम्हारे पास वह स्वर्गीय साधन नही। वह पवित्रता की वस्तु नहीं। भक्ति के विना तुम अपने को शुद्ध और पवित्र नही कर सकते, उनके बिना तुम्हारी कलुषित अन्तरात्मा पवित्रात्मा नहीं बन सकती। तुम स्वयं अपना सुधार नहीं कर सकते। भक्ति ही एक ऐसा साधन है, जिसके द्वारा मनुष्य ज्ञानी, ध्यानी तथा विज्ञानी होकर देवताओं के समान पूज्य एवं प्रतिष्ठित हो सकता है।

किन्तु शोक! प्रतिकूल दृश्य हो गया। काल ने भक्ति के अगम श्रोत को मोड़ दिया। आज भक्ति का सत्य स्वरूप जाता रहा। अविद्या ने उसके तेजोमय स्वरूप को ढँक लिया तथा ढोंग और पाखण्ड ने उसके पुनीत कर्म पर अधिकार प्राप्त कर लिया। तब क्या? उसका ज्वलन्त तेज, विकट-विक्रम, महान बल सभी धीरे-धीरे ढोंग और पाखण्ड के उदर में विलीन हो गया।

आज भक्ति का रूप खोखला है, भारत का पूर्वीय भक्ति क्षेत्र घृणित निन्दनीय कुप्रथाओं में पूर्ण हो रहा है। अन्ध-परम्परा ने लोगों के ज्ञान और बुद्धि को हर लिया है। यही कारण है कि कुपरिणाम को सोचे बिना लोग अन्धे हो लकीर-पर-लकीर पीट रहे हैं।

देवी देवताओं की भक्ति तो मन्नत और मनौओं में रह गयी। इस मन्नत और मनौओं ने भी निन्दनीय रूप धारण कर लिया। आज उसी मन्नत के फलस्वरूप सहस्त्रों भैंसे बकरे आदि निर्दोष पशु देवतओं पर चढ़ाये जाने लगे। अरे समाज ने पशुओं तक ही को चढ़ा कर नही छोड़ा, इसने तो अपनी सहस्त्रों पुत्रियों को भी जड़ मूर्त्तियों पर हँसते-हँसते चढ़ा दिया।

तू ने ही कन्याओं को देबताओं के ऊपर चढ़वाया। अन्धे! क्या इतना भी नहीं जानता कि हम एक सजीव को जड़ के साथ मिला रहे हैं। एक सजीव का जड़ के साथ कैसे निर्वाह हो सकता है। साथ ही तुम्हें यह भी सोचना चाहिये था कि तरुणी होने पर यह बालिका बिना पति के कैसे अपना निर्वाह करेगी? वेश्या बनेगी या तेरे नाम पर लात मारेगो।

प्रिय पाठकों! मैं भक्ति सम्बन्धी एक निन्दनीय कुरीति के विषय में आप लोगों का ध्यान आकृष्ट करूँगा।

देवदासी

लिंगेश्वर की जय ! लम्बे नारायण की जय !! नाटे नारायण की जय !!! बालाजी बिश्वनाथ की जय ! लाखों यात्रियो की भीड़ जयनिनाद से आकाश और पृथ्वी को एक करती हुई मन्दिर की ओर चल पड़ी। अपूर्व उल्लास था। सभी प्रतिद्वन्दिता की होड़ लगा रहे थे। जान पड़ता था कि लिगेश्वर के आकर्षण से सभी शक्ति-अनुरूप खिंचे आ रहे हों। देखते-देखते लम्बे नारायण की परिक्रमा नरमुण्डों से भर गयी।

दक्षिण भारत में कृष्णा नदी के तट पर लिंगेश्वर लम्बे नारायण का प्रसिद्ध विशाल मन्दिर है। इतना विख्यात कि दक्षिणी उस पर सब कुछ न्योछावर करने को तैयार रहते हैं।

उन्हें विश्वास है कि लिंगेश्वर लम्बे नारायण ही इस मृत्युलोक के प्रत्यक्ष देवता हैं, उनकी छाया अमृत है तथा मृत्यु उनके अधिकार में है। उनके दर्शन से जन्म जन्मान्तरों के पाप दूर हो जाते तथा मनोभिलाषायें पूर्ण हो जाती हैं। महा लिंगश्वर का स्पर्श सद्य मुक्तिदायी है। उनका पूजन करने वाला कभी नारकीय यंत्रणाओं का अधिकारी नही हो सकता।

अविद्याग्रसित दक्षिण भारत अन्धपरम्परा तथा अन्धविश्वास का आखेट हो रहा हैं। बहुत काल से वहाँ के लोग लम्बे नारायण के अन्ध कृतदास हो रहे हैं। भाग्य के भरोसे बैठ रहने वाले आलसी एवं प्रमादियों ने लिंगेश्वर लम्बे नारायण को ही अपने जीवन का ठेका दे रक्खा है। जीवन संग्राम में जहाँ किसीको संकट का सामना करना पड़ा, तत्काल लिंगेश्वर भगवान की शरण में जा गिरे। कई दिनो तक धरना दिये, मन्नतें मानी और घर आकर हाथ-पर-हाथ दिये बैठे रहे। दैवात् संकट टल गया तो लम्बे नारायण की महिमा गायी गयी और यदि संकट ने पराजय कर दिया तो भाग्य का दोष देकर रह गये।

इतना ही नही दक्षिणियों में कई निन्दनीय प्रथाएँ भी प्रचलित है। अज्ञानता के कारण लोगों में इतना अन्ध विश्वास आ गया है, जिसका वर्णन नही किया जा सकता। आज उनमें से केवल एक महा निन्दनीय—जिसे हम समाज का कोढ़ कह सकते हैं—प्रथा के विषय में पाठको का ध्यान आकृष्ट करेंगे।

उस प्रान्त के धनहीन, पुत्रहीन अथवा ऐसे व्यक्ति जिन्हें किसी प्रकार का कष्ट है वे अपनी मुक्ति के लिये लम्बे नारायण की प्रार्थना करते तथा मन्नत मानते हैं कि हमारा अमुक कार्य हो जाय तो मै प्रसाद चढ़ाऊँ, भोग लगवाऊँ, श्रृङ्गार करवाऊँ, १०१ घड़े दूध से स्नान करवाऊँ, ५०१ ब्राह्मणो को भोजन दूँ तथा छत्र, ध्वजा और तोरण चढ़ाऊँ। इतना ही नही कितने अन्ध भक्त तो यहाँ तक प्रतिज्ञा करते है कि यदि हमारे कार्य में सफलता मिल जाय, मेरे मुकद्दमे में विजय हो जाय, धन मिल जाय अथवा सन्तान हो जाय, तो मैं प्रथम कन्या आपको अर्पण कर दूँ अर्थात् उसे चढ़ा दूँ।

आज इस बीसवी शताब्दी में भी इस अन्धविश्वास का अन्त नही हो सका। सैकड़ो कन्यायें, अबोध बालिकायें लिंगेश्वर पर चढ़ाई जा रही हैं। ज्ञानान्ध माता पिता अपनी सन्तान के जीवन को अपने हाथो किस प्रकार नष्ट कर अपनी मनोभिलाषायें पूर्ण करते हैं। हाय! उन अबोध बालिकाओं की क्या दुर्दशा होती है,? पाठको! आज यही बताना है। दुरात्मा, नीच, नारकीय समाज अपने कुकृत्यों से अपना ही नहीं वरन् उन अबोध बालिकाओं का भी सर्वनाश कर डालता है।

मनोकामना पूर्ण होते ही अज्ञानी अन्धभक्त बड़े धूम धाम से लिंगेश्वर के धाम में जाकर उनकी पूजा करता तथा मन्नत रूप अपनी अबोध बालिका को चढ़ा देता है। ४, ५ वर्ष की दुधमुँही बच्ची इस रहस्य को क्या समझ सकती है? मन्दिर

की सजावट, नाच-रंग, राग-भोग तथा आकर्षक अपूर्व वस्तुओं को देख-देख प्रसन्न हो रही है, उसे अभी अपने भविष्य की चिन्ता कुछ भी नहीं है।

कन्या अर्पण करने वाले यात्रियों पर महन्त तथा पुजारी की विशेष दृष्टि रहती है। वे उनका आवश्यकता से अधिक सत्कार करते हैं। उनके पहुँचते ही ठहरने का सुंदर-से-सुंदर स्थान मिल जाता है। सेवा सुश्रूषा में किसी प्रकार की कमी नही होने पाती। भोजन के लिये श्रीखंड, मालपुआ, मलाई की पूड़ी और मोहनभोग, हर समय तैयार रहता है। मन्दिर के प्रबन्धक तथा अनुचर इन अभ्यागतों का देवताओं के समान सत्कार करते हैं।

इस भाँति आनन्द का उपभोग करते हुए पुनीत तिथि तथा सिद्ध योग आया हुआ जान पुजारी यात्रियों को कन्या अर्पण की सूचना दे जाता है। थोड़ी देर में सभी हाथों हाथ मन्दिर में पहुँचाये जाते हैं। पहले षोडशोपचार से लिंगेश्वर की पूजा की जाती है, पश्चात् विधिवत् कन्या को समर्पण कराते हैं। कन्या अर्पण हो जाने के उपरान्त कन्या का पिता अथवा रक्षक अपनी शक्ति अनुसार धन भी चढ़ाता है।

अर्पण का कृत्य समाप्त हो जाने पर पुजारी कन्या वालों की पीठ ठोकता और मुस्कुरा कर कहता है कि आप बड़े भाग्यवान हैं, ओह! इस मृत्युलोक में ऐसे भाग्यवान बिरले ही मिलते हैं। आप पूर्वजन्म के बहुत बड़े ऋषीश्वर हैं तभी तो

लम्बे भगवान ने आपकी कन्या ग्रहण की, अब आपके सात जन्म के पातक मिट गये। लम्बे नारायण के संसर्ग से आपके कुल का कोई भी नरक में न जायगा। अहा! कन्या के भाग्य की सराहना कीजिये, मानव तन पाकर भी इसने देवत्व प्राप्त किया। नि सन्देह यह कोई उस जन्म की देवी है। तभी तो लिंगेश्वर भगवान ने बुला कर अपना लिया। इस प्रकार बहुत कुछ समझा बुझाकर लोगों को डेरे पर पहुँचा देते हैं।

दूसरे दिन बालिकाओं का नामकरण किया जाता है। पण्डे-पुजारी अथआ स्वयं अध्यक्ष अपनी इच्छानुसार नाम रख देते हैं। बालिका उसी नाम से पुकारी जाती है। वे लोग प्राय अंगणा, मेना, मानिनी, जया, आदि नाम रक्खा करते हैं। अधिकतर लोग उन्हें देवदासी के नाम से पुकारते हैं।

माता पिता तथा परिवार के लोग चढ़ौआ और मनौआ हो जाने पर भी ३-४ दिन और ठहरे रहते हैं। लोगों की प्रसन्नता का ठिकाना नहीं रहता। सभी फूले नहीं समाते, मानो लिंगेश्वर को पुत्री समर्पण कर रत्न-निधि पा गये हों। उन्हें इस बात की तनिक भी चिन्ता नहीं है कि बालिका का भविष्य क्या होगा? अनन्त लिंगेश्वर प्रवाह में इसकी तरणी किधर बहेगी और कैसे पार लगेगी। उन मूर्ख स्वार्थियों को इसका ज्ञान कहाँ? वे तो केवल अपना कल्याण चाहते हैं। यदि ऐसा न होता तो वे अपनी प्यारी संतान का इस प्रकार बलिदान न करते। कितना पतित समाज है लिंगेश्वर पर चढ़े

हुए बालिकाओं के भयंकर भविष्य को जानता है, नही नही, स्वयं अपनी आँखों से देखता है, फिर भी अपनी प्यारी पुत्री को चढ़ा कर आनन्द मग्न हो नग्न ताण्डव कर रहा है।

इस प्रकार ४-५ दिनों तक उस आनन्दोत्सव का अकथनीय आनन्द प्राप्त कर सभी अपने-अपने घर जाते हैं। बालिका मंदिर में रख ली जाती है। अब वह मंदिर की सम्पत्ति हो गयी। लिंगेश्वर भगवान उसके पति हो गये। उसके लिये केवल यही काम रह गया कि वह नाचे, गावे और लिंगेश्वर जी को रिझावे। महन्त अथवा पुजारी उसके रहने तथा खाने पीने का प्रबन्ध कर देते हैं। उसे नाचने और गाने की शिक्षा दी जाने लगती है। गौरी और रोहिणी अवस्था प्राप्त करते-करते वह नाच गान में ऐसी निपुण हो जाती हैं कि हजारो लोग उन पर आकर्षित हो जाते हैं।

प्रति वर्ष सैकड़ों बालिकायें इसी प्रकार लम्बे नारायण पर चढ़ायी जाती है। मन्दिर की विशाल परिक्रमा के चारो ओर हजारो कोठरियाँ हैं, जिनमें इन कन्याओं को शरण दिया जाता है। मदिर मे लाखों की वार्षिक आय है। सभी महन्त, पुजारी तथा पण्डे आदि आनन्दपूर्वक जीवन यापन करते है। किसी को किसी प्रकार का कष्ट नही होता।

मंदिर में नित्य हजारों यात्री आते जाते रहते है, किन्तु दीपावली और देवोत्थान एकादशी के दिन बहुत बड़ा मेला लगता है। इस मेले में लाखों की भीड़ हो जाती है। यह मेला

दीपावली से अग्रहण बदी पंचमी तक चलता रहता है। सैकड़ों कोस से भक्तगण लिंगेश्वर के दर्शन, पूजन तथा पवित्र देव-दासियों के नृत्य गायन से अपने पापों को धोने के लिये हजारों लाखों की संख्या में एकत्र होते है। अपार भीड़ के कारण तीर्थ धाम एक विशाल नगर सा बन जाता है। हाय ! उस अपार जन समुद्र मे भक्ति के नाम पर अन्धपरम्परा के कारण क्या क्या अनर्थ होता है, आगे चलकर पाठको को स्वयं ही ज्ञात होगा। अन्धपरम्परा तथा अन्धविश्वास के द्वारा कैसे-कैसे अविचार और अत्याचार होते है—दिन दहाड़े, समाज की छाती पर दुराचार और व्यभिचार का दण्ड स्थापित किया जाता है, स्वयं ही दिखलाई देगा।

आज देवताओं के विजय की रात्रि है। आज के ही दिन अमरो ने असुरों के कारागार से लक्ष्मी का उद्धार किया था। दक्षिण भारत क्या सम्पूर्ण भारतखण्ड मे आज घर-घर उत्सव मनाया जाता है। देवताओं की विजय के उपलक्ष मे लोग अपने-अपने घरों को सजाते तथा प्रकाशित करते है। सर्वत्र लक्ष्मी देवी की पूजा होती है। विशेष कर बंगाल, मद्रास और महाराष्ट्र में इसकी प्रथा अधिक है। लम्बे नारायण का मेला भी आज ही आरम्भ होने वाला है।

कृष्णा के किनारे-किनारे मीलों तक यात्रियों का पड़ाव पड़ा है। दूर-दूर के आये हुए हजारों यात्री मन्दिर के चारो ओर अपनी-अपनी रावटियाँ और छोलदारियाँ लगाये समय

की प्रतीक्षा में बैठे हैं। दूकानदार लोग अपनी-अपनी दूकानें सजा रहे हैं। खेल-तमाशा वाले अपना स्टेज लगा रहे हैं। पण्डे पुजारी अपने यात्रियों को ढूँढ़ रहे हैं तथा मन चले चंडूल अपने-अपने शिकार की टोह में डोल रहे हैं।

दिन भर किसी प्रकार शान्ति रही—दोपहर हुआ, तीसरा पहर भी बीत गया। धीरे-धीरे दिन का अवसान हुआ। महा कालरात्रि आ गयी। देखते-ही-देखते लम्बे नारायण का मंदिर हजारों दीपकों से जगमगा उठा। सन्ध्या की आरती होते ही बड़े जोर से नक्कारा बजने लगा। धौंसे ने मीलों के लोगों को चौंका दिया। जो जिस स्थिति में था, उठ दौड़ा। भीड़ तुमुल जय निनाद करती हुई मंदिर की ओर बढ़ चली। थोड़ी देर में भगवान लम्बे नारायण की परिक्रमा नरमुण्डों से भर गयी।

लिंगेश्वर का मंदिर हजारों बिजलियों से जगमगा रहा था। ऊँचे-ऊँचे स्तूपों कलशों और बुर्जों पर रंग-बिरंगी चिमनियाँ सुशोभित हो रही थीं। चारों ओर तोरण, ध्वजा और पताकाएँ फहरा रही थीं। मन्दिर का स्वर्ण खम्भ, कलश और धवल स्तूप बिजलियों के प्रकाश में महासुशोभित हो रहा था। सजावट देखने ही योग्य थी। देव धाम के सजाने में वहाँ के पण्डे पुजारियों ने जी तोड़कर परिश्रम किया था।

एक प्रहर तक दर्शन-पूजन होता रहा। लाखों यात्रियों ने प्रसन्नता पूर्वक लंबे नारायण को स्पर्श किया। हजारों ने मन्नतें मानो और सैकड़ों ने चढ़ौये चढ़ाये। कुछ ही देर में सिंहद्वार

से देवदासियों का झुण्ड निकलने लगा। सभी स्वच्छ वस्त्राभूषण धारण किये सिर, बगल या हाथ में छोटी कलशियाँ अथवा झारियाँ लिये गाती बजाती कृष्णा से जल लाने जा रही थीं। आधी रात को लक्ष्मी की पूजा होगी, आगे-आगे प्रधान पुजारी भी दल सहित जय जयकार करता हुआ जा रहा था।

देवदासियों की छमछमाती आवाजों ने यात्रियों को एक दम चौंका दिया। हजारों की भीड़ पीछे दौड़ पड़ी। मंदिर से कृष्णातट तक का मार्ग खचाखच भर गया। उस महाअंधकार में दीपावली की तिमरावृत रात्रि में महा अन्धेर मच गया।

देवदासियाँ एक दो नही, सैकड़ों की संख्या में थीं। उनका गीला शरीर, उनकी मदमाती आँखें तथा मत्तगज के समान चालें मनचले नवयुवकों को व्यग्र बना रही थीं। उनके नूपुरो की झंकार, मदमाते दीवानों के दिलों पर आरे का काम कर रही थी। ओह! देखते-ही-देखते उस निविड़ अन्धकार में पण्डे-पुजारियों ने क्या किया? लेखनी तू नही लिख सकती। समाज! तनिक देखले, तेरी देवदासियो के साथ कैसा व्यवहार किया गया। हाय, उनके गले में बाहें डाल दी गईं। दुरात्माओं ने अपने कठोर प्रहारों से उनके कोमल गात्रों को कुचल दिया। तेरी भोलीभाली कन्याओं का, जिन्हें तुमने लम्बे नारायण पर चढ़ाया था, हाय! बलपूर्वक उन हत्यारों ने आलिङ्गन किया।

अब क्या था? उस महा अन्धकार में मनचला दल भी भूखे बाघ के समान उन बेचारी देवबधुओं पर प्रहार किये

बिना नहीं रहा। यह घृणित कार्य देवदासियों तक ही सीमित नहीं रह सका। झुण्ड के साथ-साथ कृष्णा का जलस्पर्श करने के लिये चलने वाली सुन्दरियों, गृहदेवियों पर भी प्रहार हुए बिना न रहा। कितने ही हत्यारों ने सुन्दरियों को उनके गोल से खीच-खीच कर बलपूर्वक उठा लिया और पास के अराड़ों, नदी की नीची करारो, टीलों, झाड़ियोंया नावों के भीतर एक नही सैकड़ों नवयुवती अधूती मदमत्त देवदासियाँ उठा ली गईं।

कृष्णा के तट पर भीड़ रुक कर फैल गयी, पुजारीगण कृष्णा की पूजा तथा बन्दना करने लगे। पण्डे लोग अपने यात्रियों की पूजा करवाने लगे। श्रद्धालु भक्त जयकृष्णा भी कह कर उस अर्द्ध निशा मे गोते लगाने लगे। हजारों भक्तगण हाथ बाँधे विरदावली बखान करने लगे। इस प्रकार इधर तो यह भजन पूजन हो रहा था और उधर कृष्णा के ही भक्त अपने ही कृष्ण कर्म से अपने जीवन को कलुषित कर रहे थे।

इस प्रकार एक प्रहर के अन्तर्गत हजारों प्रेमी-प्रेमिकाओं ने अपनी काम-पिपाशा शान्त की। इतना अनर्थ मच गया, किन्तु किसी को कानोकान खबर भी नही मिली और किसी प्रकार की अशान्ति भी नही हुई। देवदासियों ने अपने को उठा कर ले जाते समय चूँ तक न की। समाज! इसका कारण जान सका? इसका रहस्य तू स्वयं जान लेगा। तेरी वर वधुएँ तथा कुमारी कन्याओं ने अपने ऊपर बलात्कार होते समय बड़े जोर-जोर से चिल्लाकर तुम्हें पुकारा, परन्तु तू बहरा हो गया था

अथवा उस तुमुल कोलाहल से उन बेचारी की आवाजें तुम्हारे कर्ण रंध्रों में प्रवेश नही कर सकी।

आकाश के तारे तेजहीन हो गये। पूजन के पश्चात् चढ़ाये हुए दीपो का प्रकाश मंद हो गया। वायु घोर कालिमा को लेकर द्रुत गति से बहने लगी। देखते-ही-देखते कृष्णा का जल कृष्ण होकर बहने लगा।

प्रेमी-प्रेमिकाओं के लिये तो यह अपूर्व स्वर्ण संयोग था। भक्ति की आड़ में उन लोगो ने आज चिरसंचित अभिलाषाओं को पूर्ण कर लिया। आज कृष्णा के कृष्ण उपकूल पर कौन पूछने और कौन देखने वाला था। आज तो एक छत्र नादिरशाही थी।

आधी रात बीत गयी, महा लक्ष्मीदेवी की पूजा समाप्त हुई। अब देवदासियों का नृत्य आरम्भ हुआ। लम्बे नारायण की विस्तृत सज्जित परिक्रमा में एक साथ ही सैकड़ों देव-दासियाँ वस्त्राभूषण से सज्जित हो थिरकने लगी। लाखो की भीड़ चारो ओर शान्तिपूर्वक बैठ गयी।

नृत्य का रूप उत्तरोत्तर बढ़ता हो गया। नूपुरो की छम-छमाती आवाज, किंकिणी की मधुर ध्वनि तथा पीन पयोधरों का स्पन्दन एवं सुन्दर नेत्रों के कटाक्ष ने कुछ ही देर मे दर्शकों को व्याकुल कर दिया। ओह! देखते-हो-देखते दृश्य पूर्ण कुत्सित हो उठा। सुन्दरी युवती देवदासियाँ नृत्य करते-करते सुन्दर युवा दर्शकों को उठा पूर्णालिंगन कर पुन. पूर्ववत नृत्य करने लगी।

देवदासियाँ नृत्य काल में जिसका हाथ पकड़ लेती थीं, उसे धर्म-दृष्टि से विवश हो उठ कर उनका प्रगाढ़ आलिङ्गन करना पड़ता था। दक्षिणियों में यह बात बड़े भाग्य की मानी जाती थी। जिसको हाथ पकड़ कर देवदासी उठाकर आलिङ्गन करे, समझ लो उसके पातक दूर हो गये। अब वह नर्क का अधिकारी नहीं रह सकता। मृत्यु उपरान्त उसे सद्यः स्वर्ग प्राप्त होगा। देवदासियाँ जिसे उठाती थीं। लोग आपस में उसके लिये कानाफूसी करने लगते थे कि आज इनका भाग्य उदय हुआ है, उस जन्म के ये बड़े पुण्यात्मा हैं, प्रभु ने इन्हें अपना रूप दान किया है, तभी तो देवदासियों ने निरख कर इन्हें उठा कर हृदय से लगाया।

धीरे-धीरे आलिंगन का व्यापार बढ़ता ही गया, तृतीय प्रहर रात्रि बीतते-बीतते महान जघन्य कर्म होने लगा। हजारों मनचले चंडूल आलिङ्गन का स्वाद लेने के लिये पीछे से धीरे-धीरे आगे बढ़ने लगे। बड़े-बूढ़े यह कह-कह कर उन्हें आगे जाने देने लगे कि प्रभु ने इन्हें याद किया है। इस प्रकार पापियों का दल आगे पहुँच लम्बे नारायण की पवित्र परिक्रमा में लाखों व्यक्तियों के सन्मुख मनमाना अनर्थ करने लगा।

काम पीड़िता देवदासियाँ सुन्दर मनमाने युवकों को उठा कर प्रथम उसका हाथ पकड़ नृत्य करते हुए परिक्रमा करती थीं, पश्चात् उन्हें बाहुपाश से आबद्ध कर बार-बार प्रगाढ़ आलिङ्गन कर भक्ति का परिचय देती थीं। प्राय. आलिङ्गन के समय

देवदासियों को सुध-बुध नहीं रहती थी। उनके वस्त्र स्थान से हट जाते थे, वक्ष पर सुन्दर उरोज निकल पड़ता था। हाय! ऐसे समय में क्यों न कामियों की कामनायें पूर्ण हों।

आलिङ्गन काल में यहाँ तक देखा गया कि युवकों की चैतन्य इन्द्रियों ने देवदासियों के पवित्र मदन मंदिर का स्पर्श किया। हाय! उन हत्यारों के अपवित्र करों ने उन बेचारी देववधुओं के पुनीत उन्नत उरोजों का बलपूर्वक मर्दन किया। ओह! उनके उच्छिष्ट भरे हुए मुखों ने देवदासियों के सुन्दर अरुण कपोलों का चुम्बन किया।

यह चुम्बन और आलिङ्गन का वीभत्स बाजार पहरों गर्म रहा। कुछ ही देर में हजारों देवदासियाँ तथा दुराचारी युवक स्खलित हो उठे। इस नारकीय दृश्य ने सहस्रों को स्वयं ही स्खलित कर डाला। भोर होते-होते युवकों की धोतियाँ तथा देवबधुओं की साड़ियाँ तर हो उठीं।

भोर की भैरवी ने साक्षात् काम भैरव को जगा दिया। वृद्धों का सुप्त कामदण्ड भी जागृत हो भैरव रस छोड़ने लगा। सूर्योदय तक यही व्यापार होता रहा। इस प्रकार सवेरे की आरती हो जाने के बाद यह वार्षिक कृत्य समाप्त हुआ। धीरे-धीरे घण्टों में भीड़ छँटी और रौरव जन-शून्य हुआ।

भीड़ पुनः कृष्णा के किनारे पहुँचती है। लोग स्नान-ध्यान से निवृत्त हो दोपहर को पुन. देवदासियों के निकट आते तथा दर्शन-पूजा करते हैं। इस समय सुन्दरी नवयुवती देववधुओं

के निकट बड़ी भीड़ रहती है। हजारो चण्डूल तो रूप-सुधा पान करने के लिये पहुँचते हैं, सैकड़ों अपने यहाँ आने का निमन्त्रण देते हैं और अनेकों अपनी ओर आकर्षित करने के लिये हजारों रुपये भेंट करते है।

यह है देववधुओं की कथा और उनका चरित्र-चित्रण। कुछ युवतियों को छोड़ कर बाकी सभी साल भर बाहर अपने प्रेमियों तथा लम्बे नारायण के अन्धभक्तो के यहाँ घूमती रहती है। साल में केवल एक बार इसी दीपावली के समय सबो को मन्दिर पर आना पड़ता है।

इस प्रकार नृत्य गान के व्यापार से सभी दूषित हो जाती हैं। गर्भ रह जाने पर उनके सामने बड़े संकट का समय आ जाता है। यदि गर्भपात हो गया तो ठीक, नही तो उन्हें अपने प्रेमी के यहाँ रहना पड़ता है अथवा विवश हो वेश्या-वृत्ति में अपने को अर्पण कर देना पड़ता है। हाय! सहस्रो देवदासियों की ऐसी दुर्दशा नित्य होती रहती है, फिर भी अनभिज्ञ माता-पिताओं की दृष्टि काम नही देती और वे अपनी बालिकाओ की हत्या से अपना हाथ नही खींचते।

बन्धुओं! दक्षिण समाज का यह रोग अत्यन्त दु.खदायी हो रहा है। यद्यपि अब बहुत कुछ सुधार हो चुका है फिर भी देवदासियों की जाति बन चुकी है। अतः जब तक उचित प्रतिकार न होगा, कल्याण होना असम्भव है।

१०

पूर्वाभास

समाज ! आधुनिक समाज ! तू क्या हो गया ? तुम्हारी वह पूर्वीय लज्जाशीलता कहाँ गयी ? अतीत के ब्रह्मचारियों की शिष्टता तथा विशिष्टताएँ किस अज्ञात गह्वर में जा छिपी। समाज ! निर्लज्ज समाज ! आँखें खोल और अपने अन्तस्तल के उस भयानक नग्न नृत्य को देख, जो तेरी निर्लज्ज आत्माएँ कर रही हैं।

लज्जाशील समाज ! आज तू निर्लज्जों का केन्द्र बन रहा है, आज तेरा बच्चा-बच्चा निर्लज्ज हो रहा है। तेरे बड़े-बड़े सभ्य आधुनिक शिक्षा के क्रीतदास तथा लाखों शूटेड बूटेड जेंटलमैन लज्जाहीन हो इधर उधर भटक रहे हैं। तेरी देवियाँ और बालि-

काएँ भी अपने को निर्लज्ज बना चुकी हैं। हा! आज समाज की छाती पर सर्वत्र निर्लज्जता का नग्न नृत्य हो रहा है।

ठीक इसी सम्बन्ध का सुधा में एक लेख प्रकाशित हुआ है। वास्तव में उसका निर्लज्जता का नग्न नृत्य नामक शीर्षक पूर्ण उपयुक्त है। पाठकों के हितार्थ हम उसे यहाँ पर उद्धृत कर देते हैं।

पञ्जाब प्रान्त की राजधानी लाहौर जो शिक्षा का केन्द्र माना जाता है, आज लौंडों का डेरा बन रहा है। ये दूसरों की बहिन-बेटियों को धर्मभ्रष्ट करने के लिये सदा उतारू रहते हैं। माता पिता से कहते हैं—हम शिक्षा प्राप्त करने जा रहे हैं, परन्तु समझ में नहीं आता कि वे यहाँ किस प्रकार की शिक्षा पाते हैं; जो न तो उन्हें अपने सहपाठियों को भाई और न सहपाठिकाओं को बहिन समझना सिखाती है।

ये जेण्टलमैन सिर से पैर तक अपवित्रता से भरे हैं। उन्हें सिवाय भ्रष्टाचार के और कुछ सूझता नहीं। स्कूल और कालेजों से छुट्टी पाते ही लड़कियों की संस्थाओं के सामने धरना देकर बैठ जाते है। किसी पर कुदृष्टि डाली, किसी से मसखरी की, किसी पर आवाज कसी। वहाँ से जूते खाकर निकले तो अनारकली और माल रोड पर चक्कर काटने लगे। उन्हें न धर्माधर्म का विचार है और न कुछ मर्यादा का। इतनी निर्लज्जता को देखकर निर्लज्जता भी स्वयं लज्जित होती है।

जिन ताँगों पर स्कूलों और कालेजों की लड़कियाँ बैठी

थीं, उनके पीछे ये कालिजियेट कुत्ते इस प्रकार लगे रहे जिस प्रकार बुली कुत्ता शिकार के पीछे रहता है। कइयों का दु-साहस तो इतना बढ़ा कि उन्होंने स्त्रियों को ताँगे पर से घसीट लिया और उनके कपड़े फाड़ डाले। उन बेचारियों को दूसरों के घरों मे जाकर आश्रय लेना पड़ा। कई बदमाशों ने स्त्रियों की मोटर को चारो ओर से घेर कर उन्हें आगे बढ़ने से रोक दिया, फिर अश्लील वचन बोलते हुए ताली बजाने लगे। चारो ओर इस प्रकार हाहाकार मच रहा था, मानो वहाँ पागल कुत्ते आ गये हों। कोई लडकियो पर आवाजें कस रहा था तो कोई कन्धे मार रहा था, कोई वस्त्र खीच रहा था तो कोई चुटकियाँ काट रहा था। निर्लज्ज छोकरे बे-लगाम होकर पागल की तरह प्रलाप कर रहे थे।

अश्लीलता और अशिष्टता का ताण्डव नृत्य दिखाने वाले ये कौन थे? ये थे नयी रोशनी के नवयुवक, कालेजों के पढ़े-लिखे शूटेड-बूटेड जेण्टिल मैन। ये वही थे जो शिक्षा की डींग मारते हैं और पढ़ने के बहाने माता पिता का हजारों रुपया बुरे कामो मे खोते हैं। इन दुष्टों के दु साहस की भी कोई सीमा है। लड़कियों की मोटरो और गाड़ियों में कङ्कड़ फेंकते हैं, बारूद भरे हुए पटाखे छोड़ते है, काँचो और दरवाजों को तोड डालते हैं, लड़कियों की बाहें तक पकड़ कर घसीटते हैं।

यह है इन भारत-सपूतों का मातृ शक्ति पूजन। सड़क पर या कालिजों में जहाँ दो चार लड़कियाँ दिखायी दी, झट उनके

आगे-पीछे हो लिये और जो चाहा बकना आरम्भ किया। कभी उनको दिखा-दिखा कर एक दूसरे को धक्का दिया और गाली दी, जिससे लड़कियाँ कुछ बोलें।

जब कभी लड़कियाँ रात्रि में नाव की सैर करने जाती हैं तो बहुत से शैतान अपनी नाव को उनकी नाव के साथ टकराते और एक दूसरे से ऐसे-ऐसे अपशब्द कहते हैं कि सुने नहीं जाते। बेचारी लड़कियों को नाक में दम आता है। जहाँ भी जाओ, वहीं इन शैतानों के डेरे जमे हुए हैं। ये टोलियों की टोलियाँ बना कर मँडराते फिरते हैं। समझ में नहीं आता, इनकी निर्लज्जता की भी कोई सीमा है या नहीं। हजारों बार धिक्कारने पर भी कोई नहीं मानते।

समाज! अपने सपूतों की काली करतूतें देख! क्या इन्हीं नारकीय नरपशुओं के द्वारा तू सुधार की डींगें मार रहा है। क्या इन्हींके द्वारा तुम्हारा अभीष्ट सिद्ध होगा? क्या ये निर्लज्ज आत्माएँ तुम्हें पूर्वीय गुणशाली समाज बना सकेंगी?

देख! तेरी शिक्षा प्रणाली दूषित हो रही है। निर्लज्जता का वातावरण कुशिक्षा के ही कारण तेरे देश में फैला है। आज मैं तुम्हें यही दिखाना चाहता हूँ। कुशिक्षा के कारण निर्लज्ज जीवन के द्वारा कितना अधःपतन होता है। मेरी कहानी को गल्प न समझ, ऐसे एक नहीं लाखों काण्ड तेरे अन्धकारावृत्त विशाल वक्षस्थल पर नित्य होते ही रहते हैं।

निर्लज्जता का नग्न नृत्य

प्रिय पाठकों! यह हमारी अन्तिम कहानी उत्तर भारत के एक प्रसिद्ध विद्यापीठ से सम्बन्ध रखती है। वास्तव में यह उसी विश्वविद्यालय की रोमाञ्चकारी सत्य घटना है। उस पवित्र धाम के पापाचरण की इस निर्लज्ज कथा को पढ़ कर निर्लज्जता स्वयं रो उठेगी। जब विद्यापीठों, शिक्षाधामों तथा मनुष्य बनाने वाले ठेकेदारों की यह दुर्दशा है तो अन्यान्य शिक्षाहीन स्थानों से क्या आशा की जा सकती है।

भारत के अतीत गौरव की स्मृति-दिलाने वाला यह विख्यात विश्वविद्यालय एक रमणीक स्थान में मीलों तक बसा था। शिक्षालयों के चारों ओर अनेक उपवन तथा वाटि-

काएँ लगी थी। उद्यानों के बीच ऊँचे-ऊँचे सुन्दर कलशों से पूर्ण शिक्षा-भवन सुशोभित होता था। प्रकृति ने इस पवित्र धाम को सर्वाङ्ग सुन्दर बनाने की भरपूर चेष्टा की थी।

कालेज-भवनों से दूर हट कर कई विशाल छात्रावास थे। जिनमें दूर-दूर के सहस्रों छात्र निवास कर शिक्षा ग्रहण करते थे। पास ही थोड़ी दूर पर एक सुन्दर उद्यान में कन्याओं का होस्टल था, जिनमें उच्च कक्षा की शिक्षा प्राप्त करने वाली सैकड़ो भारतीय कन्यायें रहती थी।

विद्यालय में सह-शिक्षा का प्रचार था; अर्थात् बालक बालिकाएँ एक ही स्थान पर शिक्षा पाते थे। उनका निवास पृथक्-पृथक् होस्टलों में था। बालकों के होस्टल का निरीक्षण-भार कालेज के योग्य प्रोफेसरो को दिया गया था तथा कन्या हास्टल की रक्षिका एक लेडी सुपरिण्टेण्डेण्ट थी।

होस्टलों का प्रबन्ध अच्छा था। बालक-बालिकाओं की दैनिक आवश्यक प्राय सभी वस्तुएँ वही मिल जाती थी। छात्रावास के सुपरिण्टेण्डेण्ट बालकों का विशेष ध्यान रखते थे। छात्रावास का नियम बड़ा कठोर था। बालक-बालिकाओ को विद्यालय के अतिरिक्त अन्यत्र भ्रमण करने की आज्ञा नहीं थी। सन्ध्या-उपस्थिति के पश्चात् कोई कही नही जा सकता था। खाने-पीने की सभी व्यवस्था उत्तम मेसों द्वारा की जाती थी। इस प्रकार अपने अनुपम गुणों तथा सुन्दरता से विद्यालय विख्यात दर्शनीय हो गया था।

निर्लज्जता का नग्न नृत्य

विश्वविद्यालय के पास ही एक सुन्दर नगर बसा था। था तो सुन्दर, दर्शनीय, किन्तु भीतर से विषय वासनाओं का अड्डा तथा दुर्गुणों का केन्द्र था। प्रत्यक्ष विद्या-आलोक के निकट निविड़ अन्धकार का वास था। इसे ही लोग दीया तले अँधेरा कहा करते हैं।

साँझ होते-होते विद्यालय-छात्रावास के बालक-बालिकाओं की टोलियाँ दिखायी देने लगती थीं। कोई साइकिल से, कोई मोटर साइकिल और कोई इक्के-ताँगे से दौड़ता हुआ नगर की ओर न मालूम क्या पाने के लिये चल पड़ता था। कभी-कभी तो एक साइकिल पर ४-४, ५-५ लड़के लदे रहते थे।

आधुनिक शिक्षालय में शिक्षा प्राप्त करने वाले ये बालक परस्पर अशिष्ट व्यवहार करते हुए नगर में प्रवेश करते थे। कभी-कभी बालक-बालिकाएँ सवारी पर एक साथ बैठ कर कुत्सित आचरण करते हुए शहर मे घूमते थे, जिन्हें देख सभ्य व्यक्ति बिना आँखें नीचे नही रह सकता। होस्टल के चण्डूल लड़के मुण्डा एक्का या ताँगे पर अपनी प्रेमिका छात्राओं को लेकर प्रत्यक्ष प्रेमालिंगन करते हुए सरे बाजार निकलते थे। सवारी पर बैठे हुए राहचलते, चुम्बन आलिंगन आदि प्रेम कर्म तो उनका दैनिक व्यवहार हो गया था। शहर के लुंगाड़े यह पवित्र सीन देखने के लिए समय से घण्टो पहले विद्यापीठ की सड़क पर आ डटते थे, वास्तव में इन निर्लज्जो के आने पर नागरिकों की आँखें अनायास उनकी ओर झुक ही जाती थीं।

ये कालिजियेट कुत्ते यहाँ क्यों आते थे? रात के समय जब होस्टल छोड़ने की मनाही है, चोरी से इस प्रकार आकर वे यहाँ क्या करेंगे? वर्तमान सभ्यता के शिक्षार्थी यहाँ कौन सी शिक्षा ग्रहण करेंगे?

विद्यापीठ के दुश्चरित्र विद्यार्थी अपनी दुर्वासनाओं की पूर्ति के लिये इस प्रकार नगर में आते थे। कुछ सिनेमा, थियेटर तथा अन्य खेलों में समय विताते, कुछ रण्डियों के यहाँ जाकर मोजरा सुनते, प्रत्यक्ष व्यभिचार करते तथा कुछ चकलों की टोह में घूमा करते थे। कितने तो कुटनियों के घरों मे जाकर विश्राम लेते थे। वे दुष्टायें धन के लोभ से गृहस्थ बहू-बेटियों को फुसला-फुसला कर इन पापियों के पास ले आती थीं। कभी-कभी तो इन कामियों की तृप्ति के लिये उन्हें स्वयं अपनी तथा अपने बहू-बेटियों की इज्जत देनी पड़ती थी। उन कामी कुत्तों की माँगें नित नयी-नयी सुन्दरियों की हुआ करती थीं और ये कुटनियाँ प्रसन्नतापूर्वक उन्हें पूर्ण किया करती थीं।

कुछ छात्राएँ भी अपने प्रेमियों के गले मे हाथ दिये सिनेमा, थियेटरो के अन्धकार में बैठी मिलती तथा कुछ गुप्त अड्डों में जा मन बहलाती थी।

कितनी तो लड़कों के समान ही कुटनियों के घरों पर जाती और उन्हें अपने योग्य सुन्दर युवा खोज लाने के लिये कहती थी। अनेकों चकलों में जा समाज के भय से गुप्त व्यभिचार द्वारा अपनी कामाग्नि शान्त कराती थी। कितनी ही

नवयुवतियाँ तो प्रत्यक्ष अपने नागरिक प्रेमियों से मिलने आती और उनसे खुल्लमखुल्ला व्यभिचार कर प्रसन्नता प्रकट करती थीं। हाय ! पतन के गर्त में अनेकों अविवाहित विश्वविद्यालयों में शिक्षा प्राप्त योग्य बालिकाएँ अपने को गिरा देती थीं।

निर्लज्जता की भी सीमा होती है, किन्तु इन नीच बालक-बालिकाओं ने उसकी चरम सीमा पार कर ली थी। उनके इन अपकर्मों को कोई देखता है या नहीं, इसकी उन्हें परवाह नहीं। दुनियाँ देखेगी, क्या कहेगी; इसकी उन्हें चिन्ता नहीं। हाय ! इस एकान्त कर्म को सरे बाजार करते हुए उन बेशर्म नीचों को कुछ भी शील, संकोच, लज्जा, भय, हया तथा शर्म न थी।

इस प्रकार नित्य साढ़े नौ बजे रात्रि तक बालक-बालिकाएँ मनमाना विहार कर अपने-अपने होस्टलों में लौटती थीं। मन-चले बे-लगाम लौंडे, मौज लूटते, कलिया-कबाब शराब खाते-पीते अपनी-अपनी सवारियों से उसी प्रकार अश्लील प्रदर्शन करते होस्टलों में लौटते थे। बहुत से निर्लज्ज छोकरे, ताँगों पर अपने बगल में वेश्याओं को बिठा प्रत्यक्ष उनके साथ कुत्सित कर्म करते हुए विद्यालय के फाटक तक जाते थे। कौन पूछने वाला था ? होस्टलों के रक्षक भी तो इन्हीके साथ थे। फिर क्यों न यह पवित्र नगरी काम-क्रीड़ा क्षेत्र बन उठे।

× × × ×

राधिका बाई इसी विश्व विद्यालय की बी०ए० की छात्रा थी। धनवान पिता की पुत्री होने के कारण बड़े ठाटबाट से

युनिवर्सिटी में रहती थी। वह थी भी बड़ी सुन्दरी, जिस ओर जाती थी, लोगों के नेत्र उसी ओर लग जाते थे। जान पड़ता था कि उसके रूप के विचित्र मोहनास्त्र ने सबों को मोहित कर दिया है। उस समय सर्वत्र उसी की चर्चा चल रही थी। विद्यालय के बड़े छोटे सभी राधिका से दो बातें करने के लिये सर्वस्व न्योछावर करने को प्रस्तुत रहते थे। वैसी सुंदरी से वार्तालाप करने के लिये किसका जी न ललचाए।

राधिका जैसी सुंदरी थी, वैसी ही सुशीला और सचरित्रा भी थी। तीन वर्ष बीत गये, अभी तक उसके हृदय पर पाश्चात्य सभ्यता की छाप नहीं लगी थी। सती साध्वियों के सुलक्षण उसमें विद्यमान थें। वास्तव में युनिवर्सिटी की छात्राओं मे वह आदर्श रूप थी। धीरे-धीरे अपने सद्गुणों से राधिका सर्व प्रिय हो गयी।

हाय ! शोकपूर्वक लिखना पड़ता है कि विद्यापीठ के विषयग्रस्त वातावरण ने उस अछूती को भी न छोड़ा। काल के प्रबल थपेड़े ने उसे बरबस अपने तीव्र प्रवाह में बहा दिया।

सैकड़ों सहपाठियों, सहपाठिकाओं तथा अध्यापकों से घनिष्टता बढ़ गयी। अब तो एक न एक निमंत्रण नित्य आने लगे। अप-टू-डेट सभ्यता ने उसे निमंत्रणों में पधारने के लिये बाध्य किया। हाय ! भारतीय गौरव-स्वरूप पूर्वीय चैतन्य सभ्यता मे पली, देवीरूप बालिका कुछ ही दिनों के संसर्ग में आज आसुरी सभ्यता की आखेट हो गयी।

सतसंग तू धन्य है। वास्तव में संसार का कर्ता धर्ता तू ही है। तेरे ही द्वारा लोग हंस और काग बनते हैं। तू ही सद्गुणी और दुर्गुणी बनाने वाला है। तेरे ऊपर हो मानव जाति की उन्नति और अवनति निर्भर है। निःसन्देह तुझ पर ही जीवन का सारा उत्तरदायित्व है।

पाठकों! विद्याधामों के वर्तमान वातावरण को देखिए। पश्चिमीय सभ्यता ने हमारा किस प्रकार सर्वनाश किया है। उस कुसंग में पड़ कर भरत अभिमन्यु होने वाले हमारे आशा रूपी चन्द्रमा तथा सीता सावित्री होने वाली बालिकाएँ किस विनाश के पथ पर बढ़ी जा रही हैं। हाय! इस आधुनिक शिक्षा और सभ्यता ने पूर्वीय संस्कृति नष्ट कर हमें कृतदास बना छोड़ा है।

क्या वर्तमान विद्यालयों के सम्पर्क से यह आशा की जा सकती है कि वे वर्तमान समाज के बालकों या बालिकाओं को पूर्ण शिक्षित बना दें, कदापि नहीं। जो स्वयं अपूर्ण तथा दोषपूर्ण है, वह दूसरों का सुधार कैसे कर सकता है? उसकी संगति द्वारा दूसरा भी दोषपूर्ण ही रहेगा।

आधुनिक शिक्षापद्धति पूर्व भारतीय संस्कृति के लिये तेज कुल्हाड़ी है। विषयी, लम्पट, कामी, इन्द्रियों के गुलाम, ब्रह्मचर्य रहित, चरित्र-हीन अध्यापकों तथा कुलांगार लुंगारों से जिन्होंने कभी न तो भौतिक शिक्षा ही पायी और न जिन्होंने कभी मनोयोग का ही साधन किया, वे आत्मज्ञान शून्य कालेजों

के ज्ञानदाता उन अबोध बालक एवं बालिकाओं को क्या मनुष्य बना सकते है? कदापि नहीं। हाय! वे दुश्चरित्र स्वयं डूबते और अपने साथ उन अबोधों को भी ले डूबते हैं।

छोटे स्कूलों की पढ़ाई समाप्त कर बच्चे कालिजों और विश्व-विद्यालयों में जाते हैं। वहाँ के वातावरण के अनुसार उनका बनना बिगड़ना निश्चित है। साधुओं की संगति से दुष्टात्मा भी पवित्रात्मा बन जाता है तथा पापियों का चक्र कितने अबोधों का संहार कर देता है।

यही बात राधिका के लिये हुई। सुशील कन्या कुसंग में पड़ कर पथ-भ्रष्ट हो गयी। पवित्र विद्यापीठ में जहाँ सद्गुणों का उपदेश दिया जाता था, दुर्गुणी हो गयी। उस पुनीत धाम में जहाँ उच्च सभ्यता की शिक्षा दी जाती थी, अपनी पूर्वीय सभ्यता खो बैठी। आचार के उस पवित्र मन्दिर में रहते हुए आचारहीन हो गयी। समाज! क्या अपनी प्यारी राधिका के पतन का रहस्य ज्ञात किया? इसका उत्तरदायी कौन है?

× × × ×

राधिका महीनों से बीमार है। युनिवर्सिटी के डाक्टरों की चिकित्सा हो रही है, किन्तु लाभ नहीं। दिन प्रति दिन परि-स्थिति बिगड़ती ही जाती है। अब उसका वह रूप पूर्व सा नहीं रह गया, न तो वह सुन्दरता ही रह गयी और न लाली ही। चेहरा पीला हो गया, गाल पचक गये, ज्वर और अति-सार ने बेचैन कर दिया। वमन, अरुचि और दाह ने उसे और

भी दु.ख दिया। कुछ ही दिनों में एक स्वस्थ्य ब्रह्मचारिणी नि शक्त हो खाट पर लग गयी।

कई दिनों तक औषधि की गयी। तीन महीने से ऋतुधर्म रुका है, फिर भी डाक्टरों ने रोग का निदान न कर पाया। राधिका अपने रोग का नाम जानती थी, परन्तु लज्जा तथा भय से प्रकट नहीं कर सकती थी। कई दिनों बाद होस्टल सुपरिंटेण्डेण्ट ने एक विशेषज्ञ आयुर्वेद चिकित्सक को बुलवाया। उसने आकर राधिका की भलीभाँति परीक्षा की और बतलाया कि कन्या गर्भवती है।

हाय ! हाय ! यह क्या हुआ ? होस्टल में रहने वाली यह अविवाहिता बालिका कैसे गर्भिणी हुई। हाय ! किस हत्यारे ने इस बेचारी की यह दुर्दशा की। बड़ा चिल्ल-पो मचा चारो ओर कानाफूसी होने लगी।

किन्तु नही, विश्वविद्यालय का प्रधान प्रबन्धक बड़ा चतुर और कार्यकुशल व्यक्ति था। उसने तत्काल इस विषय को दबा ही दिया और वैद्यजी द्वारा कहलवा दिया कि कन्या को रक्त-गुल्म रोग आरम्भ हो रहा है। राधिका चिकित्सा के लिये सात महीने अन्यत्र अज्ञात स्थान में भेज दी गयी।

छ. महीना बीतते-बीतते उसने एक सुंदर बालक प्रसव किया। एक माह पश्चात् विद्यालय के प्रबन्धक ने उस शिशु को अनाथालय में प्रविष्ट करा दिया। राधिका इस महा यमपाश से मुक्त हो पुन विश्वविद्यालय के उसी होस्टल में आ गयी।

यह तो एक राधिका की कथा है। ऐसी सैकडों राधा की कथायें नित्य ही हमारी आँखों के सामने आती ही रहती हैं।

इन विश्वविद्यालयों के द्वारा हमारा कितना अध पतन होता है। प्रति वर्ष सैकड़ों अविवाहित वालिकाएँ भ्रष्ट हो जाती हैं। कितनी कामज्वाला से विह्वल हो अपने को खो देती हैं। नवयुवतियाँ कुसंग पाकर वंश परम्परा के विरुद्ध आचरण धारण कर समाज को कलंकित कर देती हैं। इतना ही नहीं, सैकड़ों द्रौपदी तथा दमयन्ती होने वाली देवियाँ अविवाहित अवस्था में ही गर्भावरोध तथा गर्भपात की औषधियाँ एवं युक्तियाँ ढूँढ़ती फिरती हैं। ओह! निर्लज्जता और पापाचरण की हद हो गयी। धन्य रे वर्तमान विद्यार्थी और धन्य है आधुनिक शिक्षा। तेरे हो प्रताप से आज ब्रह्मचारिणी कुमारी कन्याएँ विद्याध्ययन काल में ही चरित्रहीन हो भ्रूण हत्या करने लगी। तेरी ही दया से बालिकाएँ विलासिनी हुई। तूने ही अनुचित प्रेम का पाठ सिखा उनके पवित्र जीवन को नष्ट कर उन्हें किसी ओर का नहीं रखा। कितनी वालिकाओं को अध्यापकों, प्रोफेसरों तथा विद्यालय के कार्यकर्ताओं द्वारा नष्ट करा दिया, कितनी ही नवयुवतियों को अपने सहपाठियों के साथ भगा दिया। हाय! अनेकों अछूती कुमारियों को बलपूर्वक वेश्या बनने के लिये बाध्य किया। यह सभी आधुनिक शिक्षा की छत्रछाया का प्रताप है।

× × × ×

उधर बालकों के कुकृत्यों का और भी विषम परिणाम हुआ। विद्यालय के स्नातकों (ब्रह्मचारियों) ने पवित्र भूमि के उज्ज्वल इतिहास को कृष्णाक्षरों से अंकित कर कलुषित कर दिया। लेखनी इन दुराचारियों की काली करतूतों को स्पष्ट लिखने में असमर्थ है।

आधुनिक विद्यालयों ने सबसे पहले फैशन का भूत चढ़ाया। फैशन ने उन्हें विलासी बनाया, विलासता ने उन्हें विषयी और दुर्गुणी बना छोड़ा। वास्तव में इसी विलासता ने उन्हें नष्ट किया। यदि विद्यालय विद्यालय होता, चरित्ररक्षा का निकेतन होता, नैतिक शिक्षा का साधन होता अथवा जीवन सुधार का शिक्षक होता तो नवयुवकों की यह दुर्दशा न होती।

यदि आधुनिक विश्वविद्यालय वास्तविक विद्या प्रदान करने वाले होते, यदि वहां सच्ची शिक्षा दी जाती होती अथवा मनुष्य बनने का वहाँ सत्य साधन होता तो उनके वायुमण्डल से अप्राकृतिक व्यभिचार की गूँज नहीं उठती। स्नातकों में वीर्यपात का रोग न घुसता। स्वप्नदोष, प्रमेह, सूजाक, गर्मी, भगंदरादि महानिंदनीय रोगों का भयंकर आक्रमण उस पवित्र भूमि में न होता। वर्तमान विद्यापीठ का उद्देश्य यदि सुधार करना होता तो उसके शिष्यवर्ग विषयी, कुविचारी तथा लुङ्गारे न होते।

समाज तनिक सोच! एक वार अपने कुकृत्यों पर आँसू वहा। देख! आधुनिक शिक्षा ने किस प्रकार तुम्हारा सर्वनाश

किया। निर्लज्ज लौंडों ने तुम्हारे भीतर छिप-छिप कर क्या खेल दिखाया, तूने उन्हें क्या दिया और उन बेशर्मों ने तुमसे क्या पाया?

तुमने उन्हें शिक्षाधामों में भेजा सुधार के लिये, किन्तु परिणाम प्रतिकूल हुआ। वे मनुष्य के बदले हैवान बने। सद्गुणी होना चाहिये था, किन्तु दुर्गुणी बने। उन्होंने क्या सीखा। राग, द्वेष, ईर्ष्या, मद, मोह, काम, क्रोध, लोभ, असत्याचरण, चोरी, हत्या, परायी निन्दा, अविचार, अत्याचार बलात्कार और व्यभिचार करना। हाय! मानव धर्म का एक अङ्ग भी इन बालक-बालिकाओं में न आया।

सबसे पहले उन दुष्टों ने अपने जीवन को नष्ट किया। नगरों में आ वेश्याओं के संगर्ग से गर्मी सूजाक आदि प्राप्त कर कालिज की कन्याओं तथा चकलों में जा काम की भूखी तुम्हारी बहू-बेटियों को वह प्रसाद बाँटा। इतने पर भी उन नारकीय नरपशुओं की संतुष्टि नहीं हुई और उन हत्यारों ने यह महाप्रसाद अपने सहपाठियों में भी वितरण किया, वह महाप्रसाद शीघ्र ही फेस्बुला रूप से प्रकट हो होस्टल में तांडव करने लगा।

चकलों से यह रोग घर गृहस्थों के यहाँ फैला। समाज! इसके फैलाने वाले तुम्हारी ही काम की देवियाँ और मदन धारा में डुबकियाँ लगाने वाले कालिजियेट देवता हैं। तुम्हारी ही इन पवित्र आत्माओं ने यह अभूतपूर्व चमत्कार दिखाया है। क्या यह चमत्कार कल्पान्त तक मिट सकेगा? अरे

मिटेगा क्या खाक ! यह तो तुम्हें ही मिटा देगा। तुम्हारे शरीर में घुन लग चुका, तुम्हारे शरीर का रुधिर विषाक्त हो चुका, अब उसकी शुद्धी कठिन ही नही, वरन् महाकष्टसाध्य है।

महा अनर्थ हुआ। बालकों, अध्यापकों तथा प्रोफेसरों ने समाज की छाती पर कोदों दला और बालिकाओं ने मस्तक पर जूते जमाये। इतना तक तो हो चुका, किन्तु समाज न चेता। समाज ! हिन्दू समाज !! अब भी उठ और कर्तव्य निश्चय कर। उठ, आगे बढ़, निःसन्देह तुम्हारा कल्याण होगा।

समाज ! प्रथम विद्यार्थियों का सुधार कर, सच्चे कर्मनिष्ठ जितेन्द्रिय आत्मज्ञानी अध्यापकों को नियुक्त कर; शिक्षा का उद्देश्य नैतिक, धार्मिक, सामाजिक तथा राष्ट्रिय उन्नति बना। तभी तुम्हारे बच्चे सुधरेंगे।

उन्हें ब्रह्मचर्य की शिक्षा दे। सच्चा स्नातक बना। बिना उपकुर्वाण हुए वे तुम्हारा उद्धार नही कर सकेंगे। इस कार्य की सिद्धि के लिये तुम्हारी पूर्वीय संस्कृति सभ्यता और उस पुरानी प्रणाली की ही आवश्यकता है। पूर्वीय गुरुकुलों का साधन ही वर्तमान दोषों से छुड़ा कर तुम्हें पूर्वीय गुणशाली समाज बना सकता है। उसीके द्वारा तुम्हारी, तुम्हारे पुत्रों और तुम्हारी पुत्रियों की असीम निर्लज्जता जा सकती है। तभी तुम सभ्य समाज हो सकते हो और तुम्हारे काले कारनामे मिट सकते हैं।